'रिडिस्कवरी ऑफ़ लददाख' (एच.एन. कौल) का 'लददाख का पुनर्संधान' शीर्षक से हिंदी अनुवाद एवं विश्लेषण

Hindi Translation and Critical Analysis of 'Rediscovery of Ladakh' by H.N.Kaul as Ladakh ka Punarsandhan

एम. फ़िल. हिंदी अनुवाद उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक

प्रो. चमन लाल

सह-निर्देशक

डॉ. रणजीत साहा

शोध-अध्येता

सेरिङ् छोरोल

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली 110067

2012

Jawaharlal Nehru University

Centre for Indian Languages

School of Language Literature and Culture Studies

New Delhi 110067, India

Date-

DECLARATION

It is hereby declared that the M.Phil. Dissertation entitled 'The Rediscovery of ladakh' (H.N.Kaul) Ka Ladakh ka punarsandhan shirshak se Hindi anuvad evam vishleshan [Hindi Translation and Critical Analysis of 'The Rediscovery of Ladakh' by H.N. Kaul as Ladakh ka Punarsandhan] submitted by me is an original research work and has not been previously submitted for any degree in this or any other university/institution.

TSERING CHOROL

(Research Scholar)

PROF. CHAMAN LAL

(Research Supervisor)

Dr. RANJIT K. SAHA

(Co-Supervisor)

PROF. K. NACHIMUTHU

Chairperson

Centre for Indian languages, SLL & CS

JNU, New Delh

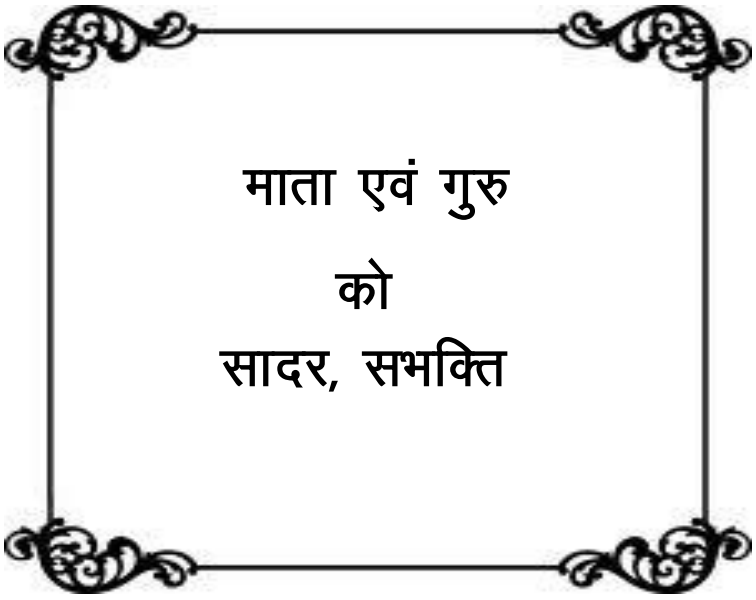
माता एवं गुरु
को
सादर, सभक्ति

विषय सूची

- आभार i-ii
- प्रस्तावना iii-ix
- चित्रों की सूची x-xi

I. प्रथम अध्याय I
लददाख का पुनर्संधान

1. भौगोलिक रूपरेखा 1-40
2. आरंभिक इतिहास 41-54
3. नमग्यल राजवंश 55-84
4. डोगरा शासन 85-96
5. लोग 97-115
6. धर्म 116-140

II. द्वितीय अध्याय II
विश्लेषण भाग

1. पाठाधारित समस्याओं का समाधान 141-154
2. स्थानीय एवं अपरिचित शब्दों की सूची 155-158
3. पाठ संबंधी चित्र

- उपसंहार 159-161
- सहायक ग्रंथ एवं 162-165
इंटरनेट वेबसाइट्स की सूची

आभार

महान शाक्यमुनि बुद्ध के पवित्र नाम का उच्चारण करते हुए अपने शोध-प्रबंध का आरंभ करने से पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण लोगों का आभार व्यक्त करना आवश्यक समझूँगी जिनके सहयोग के बिना प्रस्तुत कार्य शायद दिन का प्रकाश नहीं देख पाता।

सर्वप्रथम अपने शोध-निर्देशक प्रो. चमन लाल जी को उनके मूल्यवान मार्गदर्शन एवं स्नेह के लिए धन्यवाद देना चाहूँगी। मेरे सह-शोध निर्देशक डॉ. रणजीत साहा जी ने लगातार मुझमें विश्वास दिखाते हुए मेरी प्रत्येक जिज्ञासा का निवारण किया। प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान मेरी हर प्रकार से सहायता करने के लिए उनका जितना आभार माना जाए कम होगा।

अपने पवित्र संस्कारों से मुझे सदा प्रेरित करते रहने और मेरे हर निर्णय में प्रेरणा भरने वाले परम पूज्य माता-पिता का आभार व्यक्त कर पाना मेरे सामर्थ्य में नहीं। शोध-संबंधी सामग्री की तलाश में मेरा सहयोग करने के लिए केन्दीय बौद्ध विद्या संस्थान के डॉ. कोनछोग रिगज़िन, विषय संबंधी अनेक शंकाओं का निवारण करने के लिए उक्त संस्थान के ही डॉ. प्रेम सिंह जिना और मेरा हौसला बढ़ाते रहने के लिए पंजाब विश्वविद्यालय के डॉ. गुरमीत सिंह को अपना हार्दिक धन्यवाद देना चाहूँगी। लदद्ाख के वन्य विभाग अधिकारी श्री जिगमेत टकपा की आभारी हूँ जिन्ह. ोंने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से अमूल्य समय निकालकर लदद्ाख के पशु-पक्षियों संबंधी मेरे अल्प ज्ञान को विकसित कर प्रस्तुत शोध-कार्य में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

बौद्ध धर्म एवं इतिहास विषयक बहुत सारी शंकाओं को लेकर लेह और आसपास के गाँवों में अनेक लामाओं से साक्षात्कार हुए। अत्यंत स्नेह और खुले मन से मेरी सहायता करने के लिए उन सबका मैं हाथ जोड़कर धन्यवाद कहूँगी।

जे.एन.यू में प्रवेश पाने से लेकर आज तक मेरी हर प्रकार से सहायता करने के लिए अपनी सीनियर स्वाती ठाकुर को मैं जितना धन्यवाद दूँ, कम होगा। हालाँकि अपने सारे साथियों के नाम ले पाना कठिन होगा परन्तु जिनका किसी-न-किसी रूप में प्रस्तुत शोध में सहयोग रहा उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करना आवश्यक समझती हूँ। इस क्रम में रिनछेन, डोलकर, रिगज़िन, सोनम, लीज़ा, स्करमा, छोसग्यन, अजय, लखिमा, अमित आदि अपने सब मित्रों को धन्यवाद देना चाहूँगी।

शोध सामग्री की खोज और साक्षात्कारों के दौरान एक फ़ोन करने पर तुरंत चली आने वाली मेरी प्रिय सहेली जिमि की बहुत आभारी हूँ जो मेरे साथ बिना शिकायत हर कहीं चलने को सदा तत्पर रही। यहाँ आचो मोरुप और दोर्जे का उल्लेख करना आवश्यक होगा क्योंकि इन दो लोगों ने मेरे जीवन को विशेष रूप से प्रेरित किया है।

मैंने इस लघु शोध-प्रबंध को लिखते हुए लदद्ाख के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की है। मैं इस दिशा में आगे भी अध्ययन करती रहूँगी।

प्रस्तावना

भारत देश का मुकुट और धरती का स्वर्ग कहलाने वाली कश्मीर घाटी के पास ही स्थित लद्दाख किसी देवभूमि से कम नहीं है। यहाँ के बर्फ़ से ढँके ऊँचे पहाड़, भव्य मठ, मन को अपार शांति से भरने वाला वातावरण और यहाँ के लोगों का आतिथ्य सत्कार सब मिलकर इस क्षेत्र की भौगोलिक शुष्कता की सच्चाई को विलुप्त कर देती है। अत्यंत विषम जलवायु के बावजूद भी लद्दाख का आकर्षण देश विदेश से लोगों को अपनी ओर खींचता है। यहाँ के निवासी प्रकृति से जुड़ा हुआ, सीधा-सादा जीवन व्यतीत करते आए हैं हालाँकि आधुनिकता की लहर से यह क्षेत्र भी अछूता नहीं रह पाया जिसके चलते यहाँ के लोगों के रहन-सहन और खान-पान पर आज आधुनिकता का प्रभाव साफ़ देखा जा सकता है।

अत्यधिक शुष्क और दुर्गम मार्गों के कारण लद्दाख बहुत समय तक देश और राज्य का सौतेला ही बना रहा। आगे चलकर रक्षानीतिक दृष्टि से इस क्षेत्र का महत्त्व सामने आया, जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता था, जिसके परिणामस्वरूप लेह को श्रीनगर से सड़क द्वारा जोड़ा गया। बाद में, मनाली को लेह से जोड़नेवाली सड़क का भी निर्माण हुआ और लेह में एक हवाई अड्डा भी बनवाया गया। सन् 1974 में लद्दाख पर्यटकों के लिए खुल गया। आज इस क्षेत्र ने पहले की तुलना बहुत उन्नति की है हालाँकि देश के अन्य विकसित क्षेत्रों की तुलना में आज भी इसे पिछड़ा ही कहा जाएगा। आज भी यहाँ विकास की बहुत गुंजाइश बाक़ी है।

देश विभाजन के समय जम्मू-कश्मीर लद्दाख समेत भारत के हिस्से में आया। राज्य का अभिन्न अंग होने के बावजूद सरकार ने इस पिछड़े क्षेत्र के लोगों की समस्याओं से मुँह फेर लिया। लद्दाख के जागरूक नेताओं ने बारबार सरकार से मदद की अपील की। सन् 1949 में राज्य सरकार से पीड़ित जनता ने प्रधानमंत्री नेहरू की सरकार से याचना की। उस पत्र का अंतिम हिस्सा इस प्रकार था–

"We seek the bosom of that gracious mother (India) to receive more nutriment for growth to our full stature in everyway. She has given us what we prize above all things our religion & culture. The Ashoka wheel on her flag, symbol of goodwill for all humanity and her concern for her cultural children, calls us irrestibly. Will the great mother refuse to take to her arms one of her weakest and most forlorn and depressed children- a child whom filial love impels to respond to the call."[1]

आगे चलकर लद्दाखियों ने केन्द्र सरकार से क्षेत्रीय स्तर पर स्वशासन की माँग की जिसका परिणाम 'लद्दाख ऑटोनॉमस हिल डिवेलैपमेंट काउंसिल (LAHDC) के रूप में सामने आया जिससे लद्दाख के लोगों को अपने वर्तमान और भविष्य को चलाने और सुधारने में काफ़ी सहायता मिली।

लद्दाख दो ज़िलों में विभाजित है। लेह ज़िला, जहाँ की अधिकतर आबादी बौद्ध है और कारगिल ज़िला जहाँ की अधिकतर आबादी मुसलमान है। सन् 2010 की 5 अगस्त को बादल फटने के कारण लद्दाख के कई क्षेत्रों में आई बाढ़ ने यहाँ के जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया। लद्दाख के निवासी संशय एवं भय के एक भयानक दौर से गुज़रे। उनके घाव आज भी पूरी तरह नहीं भरे है। इस संकट के दौरान हर संप्रदाय के लोगों ने एक दूसरे को सहारा देकर एक गहरी सद्भावना और भाइचारे का प्रमाण दिया जोकि प्रशंसनीय है।

लद्दाख की अधिकतर जनता कृषि से जुड़ी हुई है। पिछले कुछ दशकों में हालाँकि लगातार विकास होने के साथ बहुत लोग अन्य कई नए कारोबार से भी जुड़ गए हैं और जैसा कि स्वाभाविक है, शहरों की ओर पलायन में बढ़ोतरी भी हुई है। आधुनिकता से संपर्क होने के साथ लद्दाख उन्नति के पथ पर तेज़ी से बढ़ चला है परन्तु समय बीतने के साथ यहाँ की संस्कृति पर विलोपन का ख़तरा

[1] ladakh Through the Ages, Towards a New Identity, Shridhar & H.N.Kaul, Indus Publishing house, Delhi, p-184

मँडराने लगा है। लद्दाख की पवित्र भूमि पर अब आधुनिकता का राक्षस प्रदूषण, अपराध और भ्रष्टाचार के रूप में घुस चुका है।

लद्दाख को लेकर अनेक पुस्तकें देशी एवं विदेशी लेखकों के द्वारा लिखी गई हैं। अधिकतर पुस्तकों में यह क्षेत्र एक पर्यटक स्थल के रूप में ही दर्शाया गया है और केवल पर्यटकों को ही आकर्षित करता है। लद्दाख के अन्य पहलुओं जैसे– इतिहास, भूगोल, राजनीति, संस्कृति आदि पर भी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं परन्तु ऐसी पुस्तकें बहुत कम हैं जो वास्तव में इस क्षेत्र के प्रति गहरी चिंता और प्रेम से प्रेरित होकर लिखी गई हों। जो न केवल लद्दाख की सुंदरता को दर्शाए बल्कि उसकी पीड़ा पर भी प्रकाश डाले। वह न केवल वर्तमान का बखान करे बल्कि भविष्य के लिए भी दिशा-निर्देश दे। इस तरह की पुस्तकों में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है हृदय नाथ कौल लिखित 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख'। सन् 1998 में इंडस पब्लि. शिंग हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित इस पुस्तक में लद्दाख को एक विस्तृत आयाम प्राप्त हुआ है।

हृदय नाथ कौल लंबे समय तक लद्दाख से जुड़े रहे। सैन्य गुप्तचर निद. शालय में अपने कार्यकाल के दौरान उन्हें लद्दाख और उसके लोगों को नज़दीक से जानने का अवसर मिला। उनसे पहले उनके पिता श्रीधर कौल भी लद्दाख में शिक्षा अधिकारी के तौर पर कार्यरत रहे जब उन्होंने इस क्षेत्र की शिक्षा व्यवस्था को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। लद्दाख के लोग उन्हें आज भी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। पिता और पुत्र दोनों ने मिलकर ' लद्दाख थ्रू द एजेज़ : टुवर्ड्स ए न्यू आईडेन्टिटि' नामक पुस्तक लिखी जो सन् 1992 में इंडस पब्लिशिंग हाउस से ही प्रकाशित हुई थी। 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' को इसी पुस्तक का परिवर्धित एवं संशोधित रूप कह सकते हैं।

'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' में कौल ने इस क्षेत्र का एक समग्र चित्र प्रस्तुत किया है जो लद्दाख से उनकी आत्मीयता के चलते प्रामाणिक एवं तथ्यपूर्ण बन पड़ा है। प्रस्तावना में स्वयं लेखक लिखते हैं कि इस क्षेत्र से उनके लंबे और गहरे संबंध के चलते पुस्तक को एक विशेष आयाम प्राप्त हुआ है। पुस्तक में कई सारे

चित्रों को भी स्थान मिला है जो इस भूमि को अच्छी तरह जानने के इच्छुक पाठकों के लिए लाभकारी सिद्ध होती है।

'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' पुस्तक मूलतः अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई है और इसके अंतर्गत तेरह प्रकरण हैं, जिनका शीर्षक अनुवाद समेत नीचे दिया जा रहा है।

1.	Geographical Set-up	–	भौगोलिक रूपरेखा
2.	Early History	–	प्राचीन इतिहास
3.	Namgyal Dynasty	–	नमग्यल राजवंश
4.	Dogra Rule	–	डोगरा शासन
5.	The People	–	लोग
6.	Religion	–	धर्म
7.	Social life,Customs and Rites	–	सामाजिक जीवन, रीतियाँ एवं अनुष्ठान
8.	Cultural Heritage	–	सांस्कृतिक धरोहर
9.	Economy	–	अर्थव्यवस्था
10.	Partition and Transition	–	विभाजन एवं संक्रमण
11.	Movement for Liberation	–	मुक्ति आंदोलन
12.	Regional Autonomy	–	क्षेत्रीय स्वशासन
13.	Impact of Modernisation	–	आधुनिकता का प्रभाव

इस पुस्तक से इस तथ्य की पुष्टि स्वतः हो जाती है कि लद्दाख का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करने में कौल ने कोई कोर-क़सर नहीं छोड़ी है। एक तरफ़ जहाँ इस क्षेत्र के भौगोलिक एवं धार्मिक स्थिति पर चर्चा हुई है, वहीं दूसरी ओर राजनीति और आधुनिकता के प्रभावों पर भी नज़र डाली गई है। क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण की चिंता पुस्तक में स्पष्ट दीख पड़ती है। लद्दाख की प्रकृति, वनस्पति एवं पशु-पक्षियों का भी संक्षिप्त और प्रामाणिक वर्णन मिलता है। पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि लेखक ने किसी विचारधारा या पूर्वग्रह के तटस्थ होकर नहीं लिखा। वह निष्पक्ष है, जो किसी भी अच्छी कृति के लिए अत्यावश्यक है।

लद्दाख पर हिन्दी भाषा में गिनी चुनी पुस्तकें ही मिल पाती हैं। अधिकतर पुस्तकें अंग्रेज़ी में ही लिखी गई हैं। प्रस्तुत शोध-अध्येता अनुवाद के माध्यम से 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक को हिन्दी के पाठकों तक पहुँचाने की इच्छुक है, परन्तु 258 पृष्ठों की इस पुस्तक में से एम.फ़िल. उपाधि की सीमा में केवल प्रथम 130 पृष्ठों का ही अनुवाद करना प्रस्तावित था। अनुवाद में मूल का-सा प्रभाव क़ायम रखने के लिए और अपरिचित स्थानों एवं वस्तुओं की जानकारी के लिए कुछ चित्रों को भी अनुवाद में स्थान दिया गया है।

लघु शोध-प्रबंध को एक व्यवस्थित स्वरूप देने के लिए इसे भिन्न अध्यायों में विभाजित किया गया है। यथा–

प्रथम अध्याय के अंतर्गत 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' पुस्तक का हिन्दी अन. ुवाद किया गया है। पुस्तक के प्रथम छः अध्याय, अर्थात् पृष्ठ 15 से लेकर 130 तक को अनुवाद के माध्यम से प्रथम अध्याय में स्थान दिया गया है। इसके अंतर्गत भौगोलिक रूपरेखा, प्राचीन इतिहास, नमग्यल राजवंश, डोगरा शासन, लोग एवं धर्म आदि अध्याय हैं। इस अध्याय का शीर्षक 'लद्दाख का पुनर्संधान' किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक है 'विश्लेषण भाग' इस अध्याय के अंतर्गत 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' के अंग्रेज़ी मूल पुस्तक एवं अनूदित भाग 'लद्दाख का पुनर्संधान' का विश्लेषण प्रस्तुत है। 'विश्लेषण भाग' के अंतर्गत दो उप-अध्यायों को स्थान दिया गया है।

(क) पाठाधारित समस्याएँ

(ख) अपरिचित, स्थानीय शब्द

प्रथम उप-अध्याय अर्थात् 'पाठाधरित समस्याएँ' के अंतर्गत 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' के अनुवाद के दौरान शोध-अध्येता का जिन समस्याओं से सामना हुआ उनका वर्णन समाधान या निराकरण के साथ किया गया है। मूल पुस्तक सन् 1999

में प्रकाशित हुई थी। सन् 2012 के आईने में झाँकने पर मूल पुस्तक में लिखित कई तथ्यों को सुधारना पड़ा है जैसे लद्दाख की जनसंख्या जिसमें सन् 1999 की तुलना में अब काफ़ी बढ़ोतरी हो चुकी है। अनुवाद करते समय शोध-अध्येता द्वारा जहाँ सुधार की आवश्यकता थी या जहाँ लेखक द्वारा दिए गए किसी बात से उसकी सहमति नहीं रही, उन तथ्यों का स्पष्टीकरण 'पाठाधारित समस्याएँ' शीर्षक के भीतर दिया गया है। इसके लिए संबंधित वाक्य को अंकित कर दिया गया है और मूल से अनुवाद के दौरान कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है। मूल पुस्तक में अन्य कई सहायक पुस्तकों से उद्धरण लिए गए है जिन्हें पाद-टिप्पणी द्वारा स्पष्ट किया गया है। अनुवाद में भी इसे इसी प्रकार रखा गया है और तारांकित चिह्न द्वारा संकेतित किया गया है। पुस्तक में मील एवं किलोमीटर के इस्तेमाल में समरूपता नहीं है। कहीं पर मील दिया गया है और कहीं कीलोमीटर। मीटर और फ़ीट के इस्तेमाल में भी समरूपता नहीं मिलती। अनुवाद में मील एवं कीलोमीटर और मीटर एवं फ़ीट के इस्तेमाल में यहीं समरूपता लाने के लिए मील को कीलोमीटर और मीटर को फ़ीट में बदलकर लिखा गया है।

'अपरिचित, स्थानीय शब्द' शीर्षक के अंतर्गत लद्दाख से संबंधित उन स्थानीय शब्दों को रखा गया है जिनका मूल पुस्तक में कई बार प्रयोग हुआ है और जिनसे अंग्रेज़ी या हिन्दी पाठक अनभिज्ञ हैं। इन शब्दों के स्पष्टीकरण के लिए एक तालिका के अंतर्गत पहले मूल अर्थात् अंग्रेज़ी रोमन लिपि में शब्द को दिया गया है, जिसका फिर हिन्दी में लिप्यंतरण कर अगले खाने में भोटी लिपि में भी शब्द को रखा गया है। अंतिम खाने में हिन्दी में अर्थ दिया गया है।

अगले अध्याय में उपसंहार और अंत में सहायक ग्रंथों की सूची, वेबसाइट्स की सूची आदि दी गई है।

लद्दाख के विषय में समग्र और प्रामाणिक जानकारी पाने के इच्छुक पाठकों के लिए 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' एक अमूल्य पुस्तक साबित हो सकती है। प्रस्तुत शोध-अध्येता ने मूल पुस्तक के हिन्दी अनूदित भाग 'लद्दाख का पुनर्संधान' को मूल के जितना हो सका निकट रखने का प्रयास किया है। शोध-अध्येता की

आशा है कि यह अनुवाद यदि कालांतर में प्रकाशित हो सकी तो यह लद्दाख के विषय में जानने के इच्छुक हिन्दी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

चित्रों की सूची

1. वर्तमान लद्दाख के विभिन्न क्षेत्रों को दर्शाता मानचित्र
2. राजा त्सेवङ् नमग्यल के अधीन क्षेत्र का मानचित्र
3. जम्मू-कश्मीर राज्य का मानचित्र
4. हिमालय में स्थित लद्दाख पर्वत शृंखला
5. ज़ोजीला दर्रा
6. पंगोङ् झील
7. ज़ांग्स्कर एवं सिंध नदी का स्नेमो के पास संगम
8. लेह के बाज़ार का एक पुराना चित्र
9. सियाचन हिमनदी पर तैनात भारतीय सेना के जवान
10. लेह स्थित नमग्यल राजमहल
11. मैगपाइ पक्षी
12. रिबोङ् (वुली हेयर)
13. क्याङ्
14. याक
15. मार्मट
16. शाक्यमुनि की ताम्र प्रतिमा
17. चतुर्भुज अवलोकितेश्वर
18. तारा देवी की ताम्र प्रतिमा
19. चतुर्भुज महाकाल

20. मैत्रेय बुद्ध की प्रतिमा

21. मंजुश्री की ताम्र प्रतिमा

22. दोर्जे फगमो

23. पाँच ध्यानी बुद्ध

24. वज्रपाणि

25. भव-चक्र

26. काल-चक्र

27. थंका चित्र

28. मणि-दीवार

29. स्तूप

30. मणि लग्स्कोर– हस्तचालित मणि चक्र

31. वज्र एवं घंटा

32. लेह स्थित जामा मस्जिद

33. ठिगसे मठ

34. लेह स्थित चर्च

35. ज़ांग्स्कर स्थित रङ्दुम मठ

36. नृत्य की मुद्रा में एक लद्दाखी महिला

37. 'पेरक'– लद्दाखी महिला का पारंपरिक आभूषण

38. ड्रोगपा महिला

39. नृत्य करते लद्दाखी पुरुष

I

प्रथम अध्याय

लददाख का पुनर्संधान

1

भौगोलिक रूपरेखा

लद्दाख जिसे लघु-तिब्बत भी कहा जाता है, बेहद खूबसूरती से भरपूर एक दुर्गम और कठिन चटियल भूमि है जो भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा में स्थित पश्चिमी हिमालय के प्रक्षिप्त शिखरों में जड़ा हुआ है। केवल तीन इंच की सालाना बारिश वाला यह क्षेत्र असामान्य रूप से सर्द और शुष्क है। प्रचण्ड सर्दी के दौरान लद्दाख के कुछ क्षेत्रों में तापमान अविश्वसनीय ढंग से शून्य से 50 डिग्री सेल्सियस तक भी गिर जाता है। इसकी असामान्य संरचना, ऊँचे और बंजर पठारों से भरी उथली घाटियाँ, अत्यधिक ठंड, कम वर्षा एवं ऑकसिजन, सूर्य की तेज़ अल्ट्रावाइलेट किरणें, यहाँ का जीवन अत्यंत कठिन और चुनौतीपूर्ण बनाती हैं। लद्दाख 97,000 वर्ग किलोमीटर तक के क्षेत्रफल में फैला हुआ है, जिसमें से 37,555 वर्ग किलोमीटर चीन के अवैध कब्ज़े में है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 1,32,299 थी (लेह ज़िला– 67,733, कारगिल ज़िला– 64,566), यह एक वर्ग मील के दायरे में संसार के लघुतम घनत्व वाले क्षेत्रों में से एक है। आतंकवाद के उदय के कारण सन् 1991 की जनगणना जम्मू-कश्मीर में नहीं की जा सकी, जिसका लद्दाख एक भाग है। इसलिए लद्दाख का वर्तमान जनसांख्यिकीय आंकड़ा उपलब्ध नहीं है।[1]

लद्दाख एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जोकि भारत के उत्तर में सिंध घाटी की उपत्यका में 32.15 और 36 डिग्री अक्षांश और 75.15 से 80 डिग्री मध्याह्नरेखा के बीच स्थित है। यह दक्षिण में चीन, पश्चिम में बाल्तीस्तान, उत्तर में कश्मीर और पूर्व में तिब्बत से घिरा हुआ है। *कनिंघम* के अनुसार "लद्दाख की बाहरी रूपरेखा की सबसे आश्चर्यजनक विशेषता है उसके पर्वत मालाओं की समान्तरता जो इस क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक फैली हुई है।" उतनी ही अनोखी है यहाँ की जलवायु। दिन में झुलसा देनेवाली तेज़ धूप और रात को चुभने वाली कड़कती ठंड यहाँ के जलवायु की विशेषता है, जिसका कारण है वायु की अत्यधिक शुष्कता।

लद्दाख पहले भारत का सबसे बड़ा संयुक्त ज़िला था। राजनैतिक कारणों से इसे सन् 1979 में लेह और कारगिल दो ज़िलों में बाँट दिया गया। सामान्यतः हालाँकि यहीं विश्वास प्रचलित है कि यह विभाजन प्रशासकीय सुविधा के कारण हुआ है। विभाजन के समय लेह की जनसंख्या क्रमशः 68,380 और कारगिल की 65,992 थी। लेह ज़िले के तीन मुख्य भौगोलिक क्षेत्र हैं– चङ्थङ्, नूबरा और शम-स्तोद जिनके प्रमुख केन्द्र न्योमा, दिस्किट और लेह में स्थित हैं।

अपने प्रसिद्ध नाम लद्दाख के अतिरिक्त इस भूमि को 'मरयुल' या 'लाल माटी वाली भूमि', 'खा चन पा' या 'हिमभूमि' आदि भी कहा जाता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री *फ़ा ह्यान* (400 ईस्वी) ने इसे 'की छा' नाम दिया। इसी तरह *हून सांग* (640 ईस्वी) ने इसको 'माओ लो बो' कहकर बुलाया है।

सामान्य अर्थों में हालाँकि लद्दाख कश्मीर घाटी की तरह लोमहर्षक प्राकृतिक सुन्दरता से भरा क्षेत्र तो नहीं है परन्तु इसकी अंतहीन पर्वत मालाओं की अनुपम भव्यता का सम्मोहन, इसकी उन्मुक्त उपत्यकाएँ, झिलमिलाती हिमनदियाँ, गर्जन करती स्रोतस्विनी के वेग, पारदर्शी झीलें और प्रकृति के अत्यंत सम्मोहक दृश्य सब अपने-आप में एक चमत्कार से कम नहीं। चटियल ज़मीन और कठोर जलवायु के बावजूद लद्दाख के निवासी अत्यंत जीवंत, प्रसन्नचित्त, स्वच्छंद एवं विनोदप्रीय हैं। इस अनोखी भूमि में फ़िनलैंड की ठंड, अफ़्रीका की गर्मी, जापान का आतिथ्य सत्कार, ईरान की रहस्यात्मकता और तिब्बत का जादू सब देखने को मिलता है। इसीलिए प्रोफ़ेसर *तोकन डी. सूमी* और उनके हमवतन विचारक जिन्होंने लद्दाख का नज़दीकी अध्ययन किया है, ने इसे मूनलैंड अर्थात् चन्द्रभूमि कहा है। भौगोलिक ढाँचे के अनुसार विश्व का सबसे ऊँचा आबाद क्षेत्र होने के अपने प्रतिष्ठित नाम के कारण लद्दाख दूर देशों से यात्रियों को अपनी और आकर्षित करता रहा है। बहुत सारे यात्री इसके नंगे पर्वतों जोकि करोड़ों वर्ष पहले जलमग्न थे, से प्रभावित होकर यहाँ आते रहे हैं। कुछ लोग इसके हृदयस्पर्शी एकांत में चिंतन-मनन करने के विचार से खिंचे चले आते रहे, जब्कि कुछ गहन बौद्ध दर्शन के अध्ययन और यहाँ के सरलस्वभावी, सहज लोगों के आतिथ्य सत्कार का आस्वाद लेने के लिए। ये

लोग विभिन्न देशों से भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को लेकर यहाँ आए और उन उद्देश्यों में उन्हें काफ़ी हद तक सफलता मिली और संतुष्टि भी। उनमें से कुछ नाम उल्लेख्य हैं जैसे सन् 1631 में येसु समाजी मिशनरी *अज़ेवीदो, क्लाईवेरा* और सन् 1710 में *देसीदेरी* और *फ़्रेयर* जिनका यहाँ के शैक्षिक एवं सामाजिक जीवन में योगदान देने की बात प्रसिद्ध है इसलिए ये विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इनके बाद *रोबर्ट श्लागिन्टवाइट, हरमन श्लागिन्टवाइट* और फिर *विलियम मूरक्रोफ़्ट* और *जॉर्ज ट्रैबेक* के भी नाम उल्लेखनीय हैं जो सन् 1819 से सन् 1825 के दौरान यहाँ आए। लद्दाख का भ्रमण करने वाले अनेक यात्रियों में से सबसे महत्त्वपूर्ण नाम *अलेकज़ेन्द्र कनिंघम* का है जो सन् 1846 में यहाँ आए और फिर सन् 1854 में जिनकी प्रतिष्ठित कृति 'लद्दाख' प्रकाशित हुई। *बेडिन* को महत्त्वपूर्ण अन्वेषकों में गिना जाता है जिनका वृतांत 'ट्रांस हिमालयाज़' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुआ।

पर्वत शृंखलाएँ

हिमालय की यह विस्तृत चटियल भूमि पर्वत शृंखलाओं से परिपूर्ण है। *कनिंघम* के अनुसार, पूर्वी हिमालय पश्चिमी हिमालय की तुलना में गौण है क्योंकि जहाँ पूर्वी शृंखलाएँ अपनी धूरी से समकोण स्थिति में हैं वहीं पश्चिमी शृंखलाएँ सामान्यतः कई समानान्तर शृंखलाओं में पंक्तिबद्ध है। इस क्षेत्र में आड़ी-तिरछी ढंग से चारों ओर फैली सविस्तृत पर्वत मालाओं को ध्यान में रखते हुए हम यहाँ केवल लद्दाख से संलग्न पर्वत मालाओं का उल्लेख करेंगे। लद्दाख की सबसे असाधारण विशेषता उसकी सीमाहीन पर्वत मालाएँ और शुष्कता हैं। यहाँ के भूगोल का एक अभिन्न अंग होने के कारण इन पर्वत मालाओं या शृंखलाओं का उल्लेख आवश्यक है। शायोक और नूबरा घाटी के उत्तर-पूर्व में फैली हुई काराकोरम पर्वत शृंखला हालाँकि बाल्तीस्तान में स्थित है, लद्दाख-शृंखला का अंग न होते हुए भी इस दृष्टि से अपना काफ़ी महत्त्व रखते हैं कि इस शृंखला में ऐवरेस्ट के बाद दूसरा सर्वाधिक प्रतिष्ठित शिखर यानि के.टू (काराकोरम) शिखर स्थित है। के.टू को इस नाम से सन् 1856 में *मॉन्टगोमेरी* ने अभिहित किया था और यह प्रायः इसी नाम से स्वीकृत भी है। सर्वे के अनुसार पहले के.टू की ऊँचाई 28,278 फ़ीट थी लेकिन अब 28,250

फ़ीट ही मान्य है। ये शृंखलाएँ लद्दाख की सीमा से बाहर हैं और बाल्तीस्तान से सुगम्य। लद्दाख शृंखला में सबसे ऊँची चोटी सासेर कंगरी है (लगभग 25197 फ़ीट) जोकि शायोक और नूबरा घाटी के ऊपरी भागों में स्थित है। लद्दाख शृंखला में कोई प्रमुख शिखर नहीं है। पूरी शृंखला की औसत ऊँचाई 19685 फ़ीट से कुछ कम है, कुछ चोटियाँ 15748 फ़ीट से भी कम ऊँचाई की हैं। यही शृंखला सिंध घाटी की उत्तरी सीमाओं का निर्माण करती हैं।

लद्दाख शृंखला के समीप ही ज़ांग्स्कर शृंखला है जोकि पहाड़ों और घाटियों का विशाल समूह है। ये लद्दाख शृंखला के दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ सुरु और ज़ांग्स्कर घाटियों में पड़ते हैं। कारगिल और खलत्से के बीच के क्षेत्र में कई घाटियाँ हैं जो अनेक नदियों का जल लाकर सिंध नदी में उडेल देती हैं। ज़ांग्स्कर नदी का भाग सबसे प्रमुख एवं बड़ा रहा है। इसका जल स्नेमो के पास सिंध नदी में जा मिलता है। इनके अतिरिक्त कई और नदियाँ हैं जैसे द्रास, सुरु और वाखा नदियाँ जो कारगिल के पास आपस में मिलकर एक हो जाती हैं। ज़ांग्स्कर शृंखला की चोटियों की ऊँचाई 18045 से 20341 फ़ीट के बीच है। इनमें सबसे प्रमुख चोटी स्तोक कंगरी है जोकि लेह के पास सिंध नदी के दूसरी तरफ़ स्थित है।

लद्दाख के प्रख्यात दर्रे

1. तगलङ् ला	17,600 फ़ीट
2. चङ् ला	17,000 फ़ीट
3. डिगर ला	17,900 फ़ीट
4. खरदोङ् ला	17,500 फ़ीट
5. मरमेसिक ला	18,420 फ़ीट
6. पेन्ज़े ला	14,000 फ़ीट
7. पोलोकोन्का ला	16,030 फ़ीट

8. लाचुलुङ् ला 16,650 फ़ीट

9. ज़ोजी ला 11,300 फ़ीट

10. नमिका ला 13,000 फ़ीट

11. फ़ोतु ला 13,400 फ़ीट

12. काराकोरम ला 18,550 फ़ीट

13. सासेर ला 17,820 फ़ीट

14. हानु ला 16,700 फ़ीट

15. लानक ला 18,100 फ़ीट

16. बारालाचा ला 16,300 फ़ीट

प्रख्यात चोटियाँ

1. नुन शिखर 23,219 फ़ीट

2. कुन शिखर 23,410 फ़ीट

3. सासेर कंगरी 25,600 फ़ीट

घाटियाँ

लद्दाख की उपर्युक्त पर्वत मालाओं या शृंखलाओं के अतिरिक्त यहाँ के भूगोल का एक और विशेष अंश है यहाँ की घाटियाँ जोकि उन्हीं में से होकर बहने वाली नदियों के नामों से जानी जाती हैं। इन्हीं का आगे संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

द्रास घाटी

जब कोई कश्मीर की तरफ़ से आते हुए ज़ोजीला दर्रे को पार करता है जोकि एक अत्यंत रोमांचक अनुभव है, तब वह कश्मीर के कोमल नीले आकाश और खुशनुमा

बयार और लद्दाख के चुभने वाली सर्द हवा एवं चौंधियाने वाली धूप का अंतर महसूस करता है। फिर वह द्रास घाटी से रू-ब-रू होता है, जो दिखने में सुनसान, ऊसर और कठोर है। द्रास नदी का स्रोत पास ही स्थित मचोई हिमनदी है। द्रास नदी आगे बढ़ती हुई अन्य नदियों या धाराओं से जुड़ जाती है जोकि आसपास के हिमप्रक्षेत्रों से उत्पन्न होती हैं और फिर उत्तर से आती शिगर नदी में जा मिलती है जो अंततः गर्मियों में कारगिल के बाह्यक्षेत्र में स्थित खारुल के पास सुरु नदी में मिल जाती है। लद्दाख में द्रास घाटी का सबसे पहला गाँव मातायम है जिसकी आबादी में कश्मीरी, दरदी और बाल्ती आते हैं और जहाँ इन तीनों भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू भी बोली जाती है। समुद्रतल से 10,000 फ़ीट की ऊँचाई पर होने के कारण द्रास साईबेरिया के बाद विश्व का सबसे ठंडा क्षेत्र है जहाँ पारा शून्य से 40 डिग्री से 60 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है, जैसा कि रिकोर्ड किया गया है। ज़ोजीला के बीच दरार के कारण बाहर से आने वाले नमी युक्त बादल अंदर प्रवेश पा जाते हैं जिस कारण भारी हिमपात होती है और यह क्षेत्र पूरी तरह से दूसरे क्षेत्रों से कट जाता है। दूसरी तरफ़ लद्दाख के अन्य क्षेत्रों को हिमालय की दीवार घिरे रहती है जिस कारण नमी युक्त ये बादल अंदर नहीं आ पाते और इसी के चलते वहाँ कम वर्षा होती है। स्पष्टतः यहाँ के निवासी भ्रोकपाओं को यहाँ के अविश्वसनीय भौगोलिक ढाँचे के सुनसान वातावरण में न्यूनतम सुविधाओं के साथ जूझना पड़ता है जिस कारण अपनी प्राचीन जीवनशैली से बाहर निकलने का उनका संघर्ष अत्यधिक कठिन बना रहता है। हालाँकि जितनी कृषि यहाँ हो पाती है, उससे इन लोगों का जीवन निर्वाह हो जाता है, फिर भी इन्हें ग़रीबी के दलदल से निकालने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। द्रास से लेकर कारगिल तक की सड़क द्रास घाटी की नदी के साथ-साथ ही चलती है।

सुरु घाटी

खारुल गाँव के समीप द्रास नदी अपना जल भेंटपूर्वक सुरु नदी में उडेल देती है, जहाँ इस नदी को पुल से बाँधा गया है। सुरु नाम से ही जाने जाने वाली सुरु घाटी और स्कर्दू का यह आरंभ-बिंदु है। सुरु नदी का स्रोत पेन्ज़ेला हिमनदी है।

कई सारी उपनदियों को समेटती हुई यह नदी नुरला गाँव के पास अपनी लंबी यात्रा को पूर्ण करती हुई सिंध में मिल जाती है। इस घाटी के कारण कारगिल तहसील की सीमा बढ़ जाती है और हालाँकि पूरे क्षेत्र की तरह ही यह घाटी भी ऊबड़-खाबड़ और पहाड़ी है फिर भी दूसरे भागों से अधिक उर्वर है। ज़िले का मुख्य केन्द्र कारगिल अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक उन्नत है और सभ्य जीवन की सुविधाएँ यहाँ के लोगों को उपलब्ध हैं।

सुरु घाटी की औसत ऊँचाई 9000 फ़ीट है जोकि कश्मीर के गुलमर्ग पठार के लगभग बराबर है। सदिर्यों में इस घाटी में भारी हिमपात होती है हालाँकि द्रास घाटी से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। पहाड़ों की पिघलती बर्फ़ के कारण नदी का पानी मटमैले रंग का हो जाता है जो सितंबर में चमत्कारिक ढंग से नीले और हरे पारदर्शी जल में परिवर्तित हो जाता है और गर्मियों के समाप्त होने तक उसी रंग का रहता है। परन्तु मौसम चाहे कोई भी हो, यहाँ का पानी हाज़मे की ताकत के लिए मशहूर है। सुरु घाटी में गर्मियाँ द्रास और अन्य घाटियों की तुलना में अधिक गरम होती है और लंबी भी। इसी कारण यहाँ साल में दो फसल लगाए जा सकते हैं। यहाँ उगने वाली फसलों में गेहूँ, जौ, बाजरा, सब्ज़ियों में शलगम, मूली आदि और फली आदि में मटर एवं काले चने आदि आते हैं। सिंध घाटी के निचले हिस्सों में लगभग 7000 फ़ीट की ऊँचाइयों में बसे दरचिक्स और गरखोन जैसे गाँव हैं जहाँ अंगूर, खुरबानी और तरबूज़ आदि फल लगाए जाते हैं जो कारगिल के बाज़ारों में बेचे जाते हैं। अंगूर की फसल का कुछ भाग गाँव के बौद्ध नागरिक शराब बनाने के लिए प्रयोग करते हैं जिसे वे स्वयं पीते हैं। यहाँ की सर्दियाँ अत्यंत विषम होती हैं लेकिन ज़िले के अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ भी वर्षा बहुत कम होती है।

ज़ांग्स्कर घाटी

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, सुरु नदी पेन्ज़ेला हिमनदी से उत्पन्न होती है। लेकिन सुरु घाटी कारगिल शहर के दक्षिण में लगभग 65 किलोमीटर तक पानीखर गाँव तक फैली मानी जाती है। पानीखर गाँव सुरु नदी और बोल्कुल हिमनदी

(14,340 फ़ीट) से उत्पन्न बोत्कुल नदी के संगम का केन्द्र है। बोत्कुल हिमनदी हिमालय की पर्वत श्रृंखला में बने एक और दर्रे, सुरु के पास स्थित है जोकि किश्तवाड़ में खुलती है। परन्तु इस घाटी को अगर सुरु नदी के समविस्तार का मान लिया जाए तो इसकी दक्षिणी सीमा पेन्ज़ेला दर्रा (14,000 फ़ीट) और उससे लगभग 97 किलोमीटर दक्षिण तक स्थित होनी चाहिए।

पानीखर गाँव जिसे सुरु भी कहा जाता है से ज़ांग्स्कर की तरफ़ जाने वाले रास्ते पर एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव आता है। यहाँ पर उक्त गाँव और सान्को गाँव के बीच एक काफ़ी ऊँचा दर्रा स्थित है जिसका नाम सुरु ला है। इसी दर्रे से होकर सन् 1832 में ज़ोरावर सिंह तिब्बत पर कब्ज़ा करने के अपने प्रसिद्ध अभियान पर आया था जो उसके लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ। इस स्थान से थोड़ी दूर समतल भूमि पर स्थित तंगोल गाँव है जिसकी पृष्ठभूमि में तीन मील लंबी हिमनदी है। यहाँ से किश्तवाड़ की ओर जाने वाले को इस हिमनदी को पार करना होगा। इसके आगे सुरु नदी एक संकीर्ण और गहरी खाई से होती हुई वेगपूर्वक गुज़रती है और नदी की दूसरी तरफ़ लगभग नौ किलोमीटर के बाद परखाचिक गाँव आता है। यह इस मार्ग का अंतिम बाल्ती गाँव है। इस गाँव से कुछ दूर नदी की दाईं ओर गौरवशाली परखाचिक हिमनदी खड़ी है। यह एक विशाल दानव के समान लगती है जो सूर्य के प्रकाश में चमचमाते हरे रंग की दिख पड़ती है और नीचे बहती नदी में हिमनदी से उत्पन्न होती असंख्य छोटी-छोटी नदिकाओं के जल का मिलना ऐसा प्रतीत होता है मानो उस दैत्य के गीले केश हों। इससे थोड़ी दूर और जाने पर दर्शक की आँखें मंत्रमुग्ध रह जाती हैं, जब वे 23,219 फ़ीट और 25,410 फ़ीट की आश्चर्यजनक ऊँचाइयों पर खड़े नुन और कुन शिखरों के दर्शन करते हैं जो नीले आकाश की तरफ़ अपनी गगनचुंबी चोटियों को उठाए हुए हैं। दर्शक का मन एक तरफ़ चोटियों को देखकर विस्मित हो जाता है, वहीं उनकी पृष्ठभूमि में फैले मेघाच्छन्न आकाश को देखकर नीरसता से भर जाता है। परखाचिक गाँव ज़ांग्स्कर की उत्तरी सीमा पर स्थित है जहाँ बाल्ती आबादी के अंतिम वृक्ष नज़र आते हैं। इसके बाद शगमा करपो आता है जो सुरु की तरफ़ से आते हुए पहला बौद्ध गाँव है। जनसांख्यिकीय दृष्टि से ज़ांग्स्कर घाटी की पहली झलक यहीं से मिलती है। चोटियाँ रखने का चलन

इस क्षेत्र में पहली बार हम यहाँ देखते हैं। लोग सामान्यतः लंबे खुरदरे ऊनी पोशाक, पतलून और कमरबंध पहनते हैं। लद्दाख के अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ भी लोग भुनी हुई जौ की सत्तु चाय के साथ खाते हैं। शगमा करपो से लगभग सात किलोमीटर की दूरी पर ज़ांग्स्कर का प्रसिद्ध बौद्ध मठ रङ्दुम गोन्पा स्थित है जो पूरे भूदृश्य पर शासन करता-सा प्रतीत होता है।

यहाँ के सीधे-साधे, अकृतिम पिछड़े लोग व्यक्ति और संपत्ति के विरुद्ध होने वाले अपराधों से सामान्यतः अनजान हैं। लेकिन यहाँ की निर्दोष आबादी किश्तवाड़ की ओर से अपने मवेशियों के लिए चरागाह ढूढ़ते और लूटपाट के इरादे से सालाना घुसपैठ करते स्वेच्छाचारी 'बाखड़वालों' के शोषण के शिकार हो जाते हैं।

पेन्ज़ेला दर्रा चित्रोपम सुन्दरता से पूर्ण है और जड़ी-बूटियों का भंडार है। इसकी चोटी पर पारदर्शी ताज़ा पानी के दो चश्मे हैं और आकर्षक आयामों वाली इसकी हिमनदी असंख्य नदिकाओं को जन्म देती है, जो उत्तर और दक्षिण की ओर बहती हुई जलसंभर में मिल जाती हैं। यह पूरा दृश्य एक प्रभावशाली प्रतिभास दिलाता है। पूर्व वाली नदिकाएँ आपस में मिलकर प्रवाहित होती हुई सुरु नदी का निर्माण करती हैं जबकि पश्चिमी नदिकाएँ अंततः ज़ांग्स्कर नदी का रूप ले लेती हैं। यह दर्रा सर्दियों में भारी हिमपात के कारण मुश्किल से छः महीने अर्थात् मई से सितंबर तक ही खुला रहता है। भौगोलिक रूप से जिस श्रृंखला में पेन्ज़ेला दर्रा स्थित है, वह ज़ांग्स्कर की उत्तरी सीमा का निर्माण करती है हालाँकि परखाचिक

और पेन्ज़ेला के बीच का क्षेत्र भी ज़ांग्स्कर का ही भाग माना जाता है।

पेन्ज़ेला दर्रे के अध्योभाग से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर अबरन गाँव आता है और यहीं से असल ज़ांग्स्कर की शुरूआत होती है। अबरन से लगभग आठ किलोमीटर दूर फे गाँव स्थित है। गर्मियों में ज़ांग्स्कर के प्रमुख कस्बे पदुम की ओर जाने के लिए रस्सी के एक पुल से ज़ांग्स्कर नदी पार करनी पड़ती है। पदुम के अधिकतर लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं हालाँकि थोड़े से मुसलमान भी हैं जो ज़ोरावर सिंह के अभियान के दौरान यहाँ बस गए थे। ये लोग यहाँ की स्थानीय बोली और कश्मीरी भाषा दोनों ही समान धाराप्रवाहिता और सरलता से बोल लेते हैं। ज़ांग्स्कर

प्रविभाजन में 24 गाँव हैं जो दक्षिण-पश्चिम में किश्तवाड़, पूर्व में लाहौल और उत्तर में लद्दाख को छूते हैं। ज़ांग्स्कर नदी की एक उपनदिका पर रस्सी का पुल बना हुआ है जिसे पार करके ही लगभग 13 किलोमीटर की दूरी पर स्थित युगल गाँव तुंगरी और करनी (Tungri-Kerni)[2] में पहुँचा जा सकता है। इससे भी आगे जाकर ज़ंगला गाँव आता है जहाँ के लोग अपने नाम के आगे ग्यलपो या राजा उपनाम जोड़ते हैं।

पदुम के पास ज़ांग्स्कर नदी के पार कोई दस किलोमीटर दूर ज़ांग्स्कर का एक और नामी गाँव करशा स्थित है। करशा और पदुम दोनों में स्कूलें हैं लेकिन डाक और टेलीग्राफ़ की सुविधा लद्दाख के इन पिछड़े क्षेत्रों में पर्याप्त नहीं है। सर्दियों में कारगिल-पदुम का रास्ता बंद रहता है, जिस कारण यहाँ लेह की तरफ़ से जुङ्लम मार्ग से पहुँचा जा सकता है जब सारी नदियाँ जम जाती हैं और बर्फ़ीले मार्ग की शक्ल ले लेती हैं।

सिंध घाटी

यह घाटी लद्दाख के केन्द्रीय भू-भाग का अधिकांश क्षेत्र, स्कर्दू जो अब पाकिस्तान में है और उससे भी आगे विस्तृत भू-भाग को समेटे हुए है। लद्दाख के केन्द्रीय क्षेत्र में ग्या, हेमिस, ल्चेमरे, ठिगसे, छुशोद, लेह, बज़्गो, तिङ्मोगङ्, सस्पोल, स्क्युरबुचन और लामायुरु आदि गाँव आते हैं। इन गाँवों की सूची यहाँ उनकी ऊँचाई के क्रम में दी गई है। लामायुरु और स्क्युरबुचन गाँव तुलना में अधिक उर्वर और गरम हैं। यहाँ अधिकतर गाँवों में फलों का उत्पादन होता है और कुछ गाँवों में सालाना दो फसल उगाए जाते हैं। लेह ज़िला, लद्दाख की आत्मा के रूप में प्रसिद्ध है और रक्षानीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह क्षेत्र चीन, रूस और पाकिस्तान का संगम स्थल है। समुद्र तल से 14,000 से 15,000 फ़ीट की ऊँचाइयों पर स्थित चङ्थङ् के विस्तृत पठार भी इसी क्षेत्र में समायोजित हैं। यह पठार लद्दाख की सीमा से बहुत आगे उस क्षेत्र तक फैला है जो अब चीन के अधीनस्थ है। चङ्थङ् के विस्तृत पठारों तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक है तगलङ् ला(17,000 फ़ीट) जो लेह के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। दूसरा मार्ग है चङ् ला जो उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है और

जिसकी ऊँचाई 17,000 फ़ीट है। तगलङ् ला प्रवेशद्वार से चङ्थङ् के सबसे ऊँचे आबाद क्षेत्र रुपशो पहुँचा जा सकता है। इस पठार की एक विशेष बात यह है कि अत्यंत शुष्कता के कारण यहाँ कम हिमपात होती है और इसीलिए हिमरेखा 20,000 फ़ीट की ऊँचाई पर है। अत्यंत हल्की वायु के कारण चक्कर आने और सांस फूलने जैसी समस्याएँ भी कई बार आती हैं। यहाँ के स्थानीय लोग चङ्पा कहलाते हैं। ये अपने जीवन निर्वाह के लिए अपने मवेशियों पर निर्भर रहते हैं। लगभग 6437 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में से केवल थोड़ा सा ही भाग कृषि के लिए उपयोग होता है। भ्रमणशील चङ्पा लोग तंबुओं में रहते हैं और एक नियमित समय के अंतर्गत चरागाह बदलते रहते हैं। लद्दाख के केन्द्रीय भाग में और विशेषकर चङ्थङ् के ऊँचे पठारों में कम वर्षा के कारण लगभग सारा जल पिघलते हिम से ही आता है।

तगलङ् दर्रे के दूसरी तरफ़ थुकजे घाटी है जो लवण झील घाटी का केन्द्रीय भाग और रुपशो की सबसे बड़ी खुली भूमि है। यह घाटी लगभग 21 किलोमीटर लंबी है। इसकी अधिकतम चौड़ाई लगभग पाँच मील है और ऊँचाई लगभग 15,000 फ़ीट है। इस घाटी में पन्लुक और त्सोकर नामक दो झीलें हैं। ताज़ा, स्वच्छ जल वाले पन्लुक झील का क्षेत्रफल लगभग दो वर्ग किलोमीटर है और त्सोकर झील लगभग 12 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल का है। इसका जल खारा है। लवण झील घाटी के पूर्व में पोलोकोंका दर्रा स्थित है (समुद्र तल से 16,300 फ़ीट ऊँचा) जहाँ से पूगा घाटी का रास्ता जाता है। पूगा घाटी सोहागा और गंधक के स्रोतों और गरम पानी के चश्मों के लिए प्रसिद्ध है। इन चश्मों का गरम पानी वातरोग और अन्य कई रोगों के इलाज के लिए लाभदायक सिद्ध होता है इसीलिए स्थानीय चिकित्सक रोगियों को इस जल से स्नान करने की सलाह देते हैं। पास ही स्थित प्रसिद्ध त्सोमोरीरी झील लगभग 24 किलोमीटर लंबी, पाँच से आठ किलोमीटर चौड़ी और 100 फ़ीट गहरी है। यह झील समुद्र तल से लगभग 14,900 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है, इसका जल खारा है और मनुष्य के लिए अनुपयुक्त है।

पोलोकोंका दर्रे की चोटी से पूगा लगभग 15 किलोमीटर दूर है और अन्ले उससे भी लगभग 97 किलोमीटर पूर्व में है। देमचोक, जहाँ लद्दाख और तिब्बत की सीमाएँ मिलती हैं, यहाँ से 73 किलोमीटर दूर है। एक और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है

लद्दाख-ल्हासा सीमा के पास स्थित छुशूल जहाँ दोनों की सीमाएँ आपस में मिल जाती हैं। हाल के कुछ वर्षों में, छुशूल भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण सीमा बन चुकी है, बल्कि लद्दाख क्षेत्र में भारत की रक्षा प्रणाली का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र यहीं है। छुशूल की तरफ़ दूसरा मार्ग चङ्ला दर्रे से घूमकर रोङ् घाटी के दाहिने छोर के साथ-साथ जाता है। लेह के उत्तर-पूर्व में लगभग 161 किलोमीटर दूर चङ्ला दर्रे के दूसरी तरफ़ लद्दाख की सबसे लंबी झील पंगोङ् स्थित है। यह झील लद्दाख और तिब्बत दोनों में फैली हुई है। इसका अधिकतर भाग लद्दाख में है।[3]

नूबरा घाटी

लद्दाख की सबसे खूबसूरत घाटियों में से एक है नूबरा घाटी, जहाँ दो रास्तों से होकर पहुँचा जा सकता है। एक है खरदोङ् ला(17,500 फ़ीट) और दूसरा है डीगर ला(17,900 फ़ीट)। खरदोङ् ला वाला मार्ग अधिक कठिन है क्योंकि यहाँ एक हिम. नदी को भी पार करना पड़ता है। लेकिन यह मार्ग डीगर ला वाले मार्ग से छोटा पड़ता है इसलिए यात्री इसे अधिक सुगम पाते हैं। इस घाटी की ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 10,000 फ़ीट है। गर्मियों में यहाँ सेब, खुरबानी, अखरोट और कुछ अन्य फलों का उत्पादन होता है।

शायोक नदी नूबरा नदी के साथ मिलकर नूबरा घाटी और बाल्तीस्तान के बीच एक जलमार्ग का निर्माण करती है जो अंततः अपना जल खपलू से आगे केरिस में पहुँचकर सिंध नदी में उडेल देती है। सिंध ज़ांग्स्कर नदी का जल लेह के पास स्नेमो में ग्रहण करती है। ज़ांग्स्कर नदी की जमी हुई सतह सर्दियों में लेह, ज़ांग्स्कर और स्नेमो के बीच यातायात का मार्ग बन जाती है। स्नेमो में ज़ांग्स्कर नदी की यात्रा समाप्त हो जाती है।

जलवायु

लद्दाख की विषम जलवायु का कारण है भारत में वर्षाऋतु के समय नमी से लदे वे बादल जो हिमालय को पार नहीं कर पाते। लद्दाख की जलवायु की प्रमुख विशेषता है– उसकी शुष्कता। परन्तु यह माना जाता है कि हजारों साल पहले यहाँ

की जलवायु इतनी शुष्क नहीं थी। यहाँ का अधिकतर भाग झीलों से ढका हुआ था और वर्षा की वार्षिक दर भी तीन इंच से अधिक थी। लद्दाख का भू-दृष्य तब सहज ही भिन्न रहा होगा। तब इस क्षेत्र में बहुत जल विद्यमान था जो भूकंप आदि भौगोलिक कारणों से रिसता गया और यह क्षेत्र उच्चतर क्षेत्रों में प्रवर्तित होता चला गया जहाँ धूप में प्रचंड गर्मी और छाया में बहुत ठंड होती है। इसी कारण गर्मियों में भी रातें ठंडी होती हैं और सर्दियों में तापमान के शून्य से नीचे गिरने पर भी धूप सरगरम होती है। ऐसी चुनौतीभरी जलवायु वाली स्थिति में यहाँ के लोग अति सरल तकनीकी विधियों के साथ, प्रकृति से जुड़कर सरल जीवन जीते हैं। यहाँ मनुष्य, उसके वातावरण एवं ऋतुओं के बीच एक कोमल संतुलन बना रहता है।

वायु

लद्दाख में पूरे साल दिन और रात वायु की जो स्थिति बनी रहती है, उसका कारण यहाँ के अहरियल, ऊँचे, खुले पठारों से दिन के समय विकीर्ण होने वाली अत्यधिक ऊष्मा है। भारत के समतली क्षेत्रों की तुलना में यहाँ की अत्यंत हल्की वायु सूर्य की प्रचंड तेज का सामना नहीं कर पाती जोकि भारत के समतली क्षेत्रों की तुलना में बहुत ज़्यादा है। हालाँकि दिन चढ़ने के साथ-साथ वायु की गति भी बढ़ती जाती है जो तेज़ वायु में परिवर्तित होकर शाम होते-होते तापमान के गिरने के साथ-साथ धीमी होती जाती है। लद्दाख के हिमालय पार के क्षेत्रों में साल भर शुष्क वायु की दिशा दक्षिणी एवं पश्चिमी ही रहती है। सन् 1841-42 की पूरी सर्दियों के अपने अनुभव के आधार पर *अलेक्ज़ेन्द्र गेरार्ड* ने देखा कि 20,000 फ़ीट से ऊँची चोटियों एवं 16,000 फ़ीट से ऊँचे क्षेत्रों में वायु की गति सदा पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी ही रहती है। *अलेक्ज़ेन्द्र कनिंघम* के भाई *जोसेफ कनिंघम* ने भी *गेरार्ड* की तरह पाया कि वायु लगभग हमेशा ही दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में बहा करती है।

दक्षिणी वायु का कारण है सूर्य की तेज़ ऊष्मा और विकिरण की उच्च मात्रा। दोपहर के आस-पास वायुमंडल का निचला संस्तर शीघ्र गरम हो जाता है जिसके

चलते हल्की वायु उत्तर ध्रुव की ओर मन्द पश्चिमी वायु बनकर बहने लगती है। दोपहर के बाद वायु का प्रवाह गतिमान होते हुए तीव्र किन्तु सुस्थिर गति की हो जाती है। शाम को नौ बजे के आसपास इस मंद वायु की गति कम हो जाती है और मध्यरात्रि के समय इसका स्थान मंद उत्तरी वायु ले लेती है जोकि सुबह के होते-होते और मंथर हो जाती है।

वर्षा और हिमपात

लद्दाख में पूरे वर्ष के दौरान वर्षा का दर तीन इंच रहता है जबकि औसत हिमपात छः इंच की ऊँचाई तक होती है जो शीघ्र पिघल जाती है। अधिक ऊँचाई पर स्थित क्षेत्र जैसे रुपशो, नूबरा, ज़ांग्स्कर और लेह में साल में लगभग तीन बार वर्षा होती है या हल्की फुहार पड़ती है। लद्दाख में *मूरक्रोफ़्ट* के दो वर्षों के प्रवास काल के दौरान केवल दस बार वर्षा हुई थी, वह भी बहुत कम मात्रा में। गर्मियों में भी कभी-कभी तापमान शून्य से नीचे गिर जाने के कारण हल्की हिमपात होती है।

तापमान

सिंध घाटी के भीतरी भागों में बसा लेह समुद्र तल से 11,500 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। अत्यधिक गर्मी, अत्यधिक ठंड और अत्यधिक शुष्कता यहाँ के जलवायु की विशेषताएँ हैं। दिन की सूखी और अति वाष्पणिक वायु वायुमंडल को उसकी थोड़ी-सी बची नमी से भी वंचित कर देती है, फलस्वरूप मेघहीन आकाश के तले धरती के विकिरण के चलते हवा अत्यंत ठंडी हो जाती है। हालाँकि, अत्यंत हल्का वायुमंडल सूर्य की तेज़ किरणों का सामना नहीं कर पाता और इसलिए कभी-कभी दोपहर की धूप भारत के किसी भी अन्य क्षेत्र से अधिक गरम हो जाती है।

साल का औसत तापमान छः डिग्री सेल्सियस से जनवरी में शून्य से 13 डिग्री सेल्सियस से भी नीचे गिर जाता है। गर्मियों के बढ़ने के साथ तापमान भी बढ़ता जाता है। सबसे गरम महीना यानी जुलाई में औसत तापमान 17 डिग्री सेल्सियस रहता है जबकि प्रतिदिन का उच्चतम तापमान 25 डिग्री सेल्सियस रहता है। गर्मी की तीव्रता इतनी है कि एक काले रंग के बोतल में पानी डालकर इस

बोतल को पारदर्शी शीशे से ढककर धूप में छोड़ देने पर यह पानी उबाला जा सकता है। वर्षा की प्रमात्रा कम है, साल भर का मिलाकर केवल 94 मिलिमीटर। प्रत्येक महीने का 15 मिलिमीटर से अधिक नहीं, सबसे अधिक वर्षा जुलाई एवं अगस्त में होती है।

नमी

बहुत ऊँचाई पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र की वायु बहुत हल्की हो जाती है जो अधिक नमी रोक नहीं पाती। इसी कारण लद्दाख की जलवायु अत्यंत शुष्क है। जलवायु की शुष्कता का एक और कारण है सूखी भूमि से ऊष्मा का विकिरण, जिससे नमी जल्दी-जल्दी उड़ जाती है। इसी कारण वायुमंडल सूर्य की किरणों को रोक नहीं पाता जिससे दोपहर की धूप अत्यधिक गरम लगती है। इतनी ही प्रचंड होती है चड्थड् सरीखे ऊँचे पठारों की सर्दियाँ। द्रास एवं ज़ांग्स्कर क्षेत्र तो अत्यधिक हिमपात के कारण सर्दियों में देश के अन्य भागों से पूरी तरह कट जाते हैं। अत्यधिक हिमपात के कारण ये क्षेत्र वायु की प्रचंड शुष्कता से, कम या बिना हिमपात वाले क्षेत्रों की तुलना में बचे रहते हैं। इन दोनों क्षेत्रों में गर्मियाँ छोटी होती हैं और आसपास के दर्रों के हिमपात के कारण बंद होने से पहले ही यहाँ प्रचंड ठंड शुरू हो जाती है। धरती के द्वारा अधिक ऊष्मा संचित न कर पाने के कारण शरत् ऋतु के आते-आते तापमान गिरना शुरू हो जाता है। इसी प्रकार गर्मी के दिनों में भी रातें ठंडी होती हैं और कभी-कभी छाया तले तापमान शून्य से नीचे चला जाता है।

97,000 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल एवं 8,000 से 14,000 फ़ीट ऊँचे इस विस्तृत भू-भाग का वर्णन सरल कार्य नहीं है। जलवायु की भिन्नता, उसकी विषमता, चारों ओर से घिरी पर्वत शृंखलाएँ एवं उसके भीतर आड़े-तिरछे ढंग से चारों दिशाओं में फैले पर्वतों से भरे इस क्षेत्र का वर्णन वास्तव में कठिन है। उपरोक्त लघु विवरण लद्दाख की मूल भौगोलिक संरचना पर कुछ प्रकाश डालता है। इस क्षेत्र की प्रतिकूल भौगोलिक संरचना इसके तेज़ आर्थिक परिवर्तन के लिए एक गंभीर चुनौती खड़ी करती है।

नदियाँ

अनेक नदियाँ लद्दाख से होकर गुज़रती हैं और बहुत सारी झीलें एवं झरनें भी इसकी छाती से उत्पन्न होते हैं। इस तरह के अनेक वरदानों से लद्दाख भरा हुआ है, जिनका संक्षिप्त विवरण पाठक की जानकारी के लिए यहाँ दिया जा रहा है।

सिंध नदी

सिंध नदी, जिससे भारत को उसका नाम प्राप्त हुआ, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से विश्व की महानतम नदियों में से एक है। लद्दाखी इस नदी को एक सिंह के मुख से उत्पन्न मानते हैं, परन्तु इसके मूल स्रोत के बारे में कोई ठोस जानकारी नहीं मिल पाती। *मूरक्रोफ़्ट* की जानकारी अनुसार कैलाश पर्वत श्रृंखला इसका स्रोत है। *कनिंघम* का मानना है कि इस नदी का असल स्रोत पावन मानसरोवर झील के उत्तर-पश्चिमी ढलानों पर स्थित रावन ह्रद झील है। यह स्रोत 17,000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। कर्नल *एस. जी. बुराड़* के अनुसार सिंध का स्रोत कैलाश एवं लद्दाख श्रृंखला के साथ-साथ चलता है। सन् 1812 ई. में *मूरक्रोफ़्ट* द्वारा सिंध नदी का अनुगमन करने पर पाया गया कि अपने स्रोत से लगभग 17 किलोमीटर की दूरी पर, सिंध की चौड़ाई 240 फ़ीट थी। *कनिंघम* ने पूगा नदिका और सिंध के संगम स्थल से कुछ किलोमीटर ऊपर, सिंध के स्रोत से लगभग 260 फ़ीट दूर सिंध की चौड़ाई इतनी ही पाई। यह दिलचस्प बात है कि लेह ज़िले में स्थित सिंध घाटी लद्दाख की आत्मा है और रणनीतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि चीन, रूस एवं पाकिस्तान का संधि केन्द्र यहीं क्षेत्र है। अपनी विस्तृत छाती पर लद्दाख विश्व के कुछ सबसे ऊँचाई पर स्थित आबाद क्षेत्रों को समेटे हुए है और साथ ही प्रकृति के कुछ असाधारण चमत्कारों को भी।

रानक से ऊपर सिंध नदी को कई स्थानों पर चलकर पार किया जा सकता है और केवल घुटनों तक का गहरा जल यात्रियों को आसानी से नदी पार करने में मदद करता है। परन्तु कई बार नदी के बर्फ़ से भी ठंडे जल के कारण इसे पार करना कठिन हो जाता है। रानक तक की सिंध की यात्रा उत्तर-दक्षिण की तरफ़ है जहाँ से लेह के बाह्यांचल में स्थित स्पीतुक गाँव कोई 209 किलोमीटर दूर है।

रानक से पहले सिंध चौड़ा और सुगाध है परन्तु लेह की तरफ़ बढ़ते हुए 200 किला. `मीटर तक इसे केवल पुलों से ही पार किया जा सकता है, जहाँ इसकी चौड़ाई बढ़ जाती है। लेह से आगे सिंध नदी द्रास नदी से अपने संगम होने तक अपना मार्ग बदलकर पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम की दिशा में 201 किलोमीटर की दूरी तक यात्रा करती है। स्नेमो के समीप, ज़ांगस्कर नदी अपना मटमैला, उग्र और प्रवाहपूर्ण जल सिंध में उडेल देती है। मोरल में पहुँचकर वाखा, सुरु एवं द्रास आदि नदियाँ भी सिंध से मिल जाती हैं। केरिस के कुछ ऊपर शायोक एवं सिंध का संगम होता है और यहाँ से स्कर्दू तक सिंध उत्तर-उत्तर-पश्चिम की दिशा में प्रवाहित होती है।

अपने स्रोत से लेकर रानक तक सिंध नदी चौड़ी एवं सुगाध है, जहाँ से ज़ांग्स्कर नदी से संगम होने तक उसका प्रवाह तेज़ रहता है और उससे आगे शायोक तक वह उग्र रूप धारण कर लेती है। ऐसे में किसी मनुष्य या जानवर का दुर्घटनावश इस नदी में गिरना निश्चित मृत्यु साबित होगा। परन्तु कलाच (Kallach)[4] पुल के पास नदी नीचे केवल 15 मीटर एवं ऊपर केवल 18 मीटर चौड़ी है। सिंध घाटी के निचले क्षेत्र सामान्यतः दिसंबर से फ़रवरी तक बर्फ़ से जमे रहते हैं। सन् 1841 में ज़ोरावर सिंह ने यहीं से अपनी सेना के साथ सिंध को पार किया था। इस नदी की लंबाई को लेकर अनेक मत प्रचलित है। *कनिंघम* कैलाश पर्वत में उसके स्रोत से लेकर भारतीय महासागर तक सिंध की लंबाई लगभग 3182 किलोमीटर मानते है। जबकि *कीथ जोन्स्टन* का आकलन *कनिंघम* से भिन्न है। वे इस नदी की लंबाई लगभग 706 किलोमीटर मानते *हैं। जनरल मैकलेगन* ने सिंध नदी के औसत ढलान का आकलन इस प्रकार किया है–"स्रोत से स्कर्दू तक 24 फ़ीट प्रति मील और कुलमिलाकर लगभग 966 किलोमीटर, स्कर्दू से अत्तोक तक 17 फ़ीट प्रति मील यानी कुलमिलाकर 709 किलोमीटर, अत्तोक से कालाबाग तक 50 फ़ीट प्रति मील, कुलमिलाकर 177 किलोमीटर, कालाबाग से मिठानकोट तक 12 इंच प्रति मील, कुलमिलाकर 596 किलोमीटर और मिठानकोट से समुद्र तक छः इंच प्रति मील, कुलमिलाकर लगभग 757 किलोमीटर।"

कुछेक पर्यवेक्षकों ने पाया है कि सिंध कभी अपने वर्तमान स्तर से काफ़ी ऊपर बहती थी। इस संदर्भ मे *अडॉल्फ़ श्लागिन्टवाइट* का सन् 1856 का यह मत

महत्त्वपूर्ण है, "स्कर्दू के पास स्थित सिंध घाटी में और अस्तोर घाटी में, जहाँ सिंध हिमालय में प्रवेश करती है, उसके समीप ही मैंने कई बार कंकरीली और रेतीली ज़मीन पाई है जो स्पष्टतः इन्हीं विशाल नदियों द्वारा छोड़ी गई है, और मैंने पाया कि इन विशाल नदियों द्वारा अपने वर्तमान स्तर से 3000 से 4000 फ़ीट ऊँची चट्टानों पर भी पुराने निशान विद्यमान हैं।"

सिंध में दो बार बाढ़ आई थी– पहली सन् 1833 में और दूसरी सन् 1841 में। पहली बार बाढ़ में नदी का संचित जल नूबरा से स्कर्दू तक के अपने 193 किलोमीटर की उग्र यात्रा में शायोक घाटी को उसके आसपास के समस्त गाँवो के साथ बहा ले गया। इसके विनाशकरी वेग का अनुमान इस घटना के चार वर्ष बाद भी स्कर्दू की हालत को देखकर लगाया जा सकता था। दूसरा जलप्रलय पहले से भी अधिक विनाशकारी सिद्ध हुआ क्योंकि इस बार शायोक घाटी के सारे वृक्षों का विनाश हो गया और बहुत बड़ी संख्या में मनुष्य, घोड़ों, बैलों, बकरियों एवं भेड़ों की जानें चली गईं।

ज़ांग्स्कर नदी

ज़ांग्स्कर नदी के भीतर दो प्रमुख नदिकाएँ आती हैं। ज़ांग्स्कर एवं सुनी-गल (Suni-gal)[5] या तीन घाट वाली नदी। ज़ांग्स्कर नदी के तीन नदी शीर्षों के नाम हैं– युनम, सेरछु और चरपा नदी। ये नदियाँ बारालाचा दर्रे से निकलती हैं जोकि हिमालय श्रृंखला के उत्तर में स्थित हैं। इनमें से ज़ांगस्कर नदी का सबसे दूरस्थ स्रोत है चरपा नदी। ये सारी नदियाँ मिलकर लिंगती कहलाती है जो काफ़ी उग्र है और सितंबर के अंत तक शांत होने तक पार नहीं की जा सकती। चरपा नदी हिम के लगातार पिघलते रहने से भरीपूरी रहती है और सितंबर मध्य में भी अपनी उग्रता एवं गहराई के कारण पार नहीं की जा सकती। लिंगती नदी ज़ांग्स्कर के केन्द्र पदुम तक 209 किलोमीटर की दूरी को उत्तर-पश्चिमी दिशा से होकर पूरा करती है। पदुम में आकर पश्चिम की और से बहने वाली एक लघु स्रोतस्विनी इसमें मिल जाती है जहाँ से फिर वह उत्तर की ओर बढ़ती हुई लगभग 129 किलोमीटर की यात्रा करके

स्नेमो पहुँचकर सिंध से एक हो जाती है। ज़ांगस्कर नदी की लंबाई लगभग 338 किलोमीटर और कुल मिलाकर इसकी ढलान 6000 फ़ीट तक मानी जाती है।

सिंध से अपने संगम के लगभग 41 किलोमीटर पीछे विशाल ज़ांग्स्कर नदी सुनी-गल या तीन घाट वाली नदी के जल को ग्रहण कर लेती है। स्नेमो से आगे सिंध एवं ज़ांगस्कर के अद्‌भुत सम्मिलन के दर्शन होते हैं। यह नदी समान प्रमाणों वाली तीन नदियों का मेल है जो अपने स्रोत से लेकर ज़ांगस्कर नदी से अपने संगम-स्थल तक उत्तर-उत्तर-पश्चिम दिशा में 177 किलोमीटर की यात्रा करती है। अपने स्रोत से लेकर पदुम तक इस नदी की लंबाई लगभग 226 किलोमीटर और ढलान 4000 फ़ीट या 28 फ़ीट प्रति मील है। पदुम से आगे ज़ांग्स्कर नदी सिंध से अपने मिलन की अंतिम यात्रा पर निकलती है। सिंध से संगम होने तक ज़ांग्स्कर नदी की लंबाई लगभग 145 किलोमीटर एवं ढलान 2000 फ़ीट या 22 फ़ीट प्रति मील है। *हेनरी स्ट्रेची* के अनुसार, "लद्‌दाख की ऊपरी भागों में जल का प्रमुख स्रोत ज़ांग्स्कर नदी ही है।"

गर्मियों में यह नदी उग्र स्वभाव की हो जाती है। पदुम की तरफ़ जाने वाले यात्री को मजनू का पेड़ की टहनियों को आपस में गूँथकर बनाई गई रस्सी के पुल के द्वारा नदी को पार करना पड़ता है। इस पुल पर नीचे की दो रस्सियाँ पैरों को टिकाने के लिए और ऊपर की दो रस्सियाँ हाथों को थामने के लिए बनी होती हैं। कमज़ोर दिलवाला आदमी इसे आसानी से पार नहीं कर सकता। पदुम से थोड़ी दूर जाकर ऐसी ही एक और पुल ज़ांग्स्कर नदी की एक स्रोतस्विनी पर भी पाई जाती है जिसे पार करके तुंगरी केनी नामक जुड़वा गाँवों तक पहुँचा जा सकता है जो वहाँ से लगभग 13 किलोमीटर दूर स्थित है। लेह से लगभग 29 किलोमीटर दूर स्नेमो में पहुँचकर ज़ांग्स्कर नदी अपना जल सिंध नदी में उडेलती है। सर्दियों में ज़ांग्स्कर नदी जम जाती है जिससे लेह, ज़ांग्स्कर एवं स्नेमो के बीच व्यापार के लिए मार्ग बन जाता है। स्नेमो में ज़ांग्स्कर नदी अपनी यात्रा समाप्त करती है।

शायोक नदी

शायोक नदी रीमो हिमनदी से उत्पन्न होती है। रीमो हिमनदी काराकोरम शृंखला में

स्थित है और सिंध की प्रमुख उपनदी है। ऊँचाई पर स्थित अपने स्रोत से शायोक बाँध और सासेर तक, यह नदी काराकोरम को पश्चिम की तरफ़ छोड़ती हुई 160 किलोमीटर की दूरी पार करके दक्षिण दिशा में बढ़ती है। अपने स्रोत से बाल्तीस्तान के शायोक कस्बे तक, इसकी लंबाई लगभग 274 किलोमीटर है। शायोक कस्बे से ही इस नदी को यह नाम प्राप्त है। चङ् छेन मो अपना जल शायोक नदी में उसके विशाल उत्तर-पश्चिमी मोड़ से थोड़ी दूरी पर उडेल देती है और इस मोड़ से आगे बढ़कर शायोक दक्षिण-पूर्व से आती लोङ् कोन्मा नदी का जल ग्रहण करती है। शायोक कस्बे से आगे पश्चिम-पूर्व-पश्चिम की दिशा में लगभग 129 किलोमीटर की दूरी पार करके यह नदी हुन्दर पहुँचती है। यहाँ वह उत्तर-पश्चिम से आती नूबरा नदी से मिल जाती है। यह नदी काफ़ी बड़ी है और यहाँ के अधिकांश भागों से होकर गुज़रती है। इस नदी का स्रोत कुमदन हिमनदी है। पूर्व में शायोक गाँव और पश्चिम में पानामिक गाँव के द्वारा इस हिमनदी तक पहुँचा जा सकता है। हुनदर से आगे शायोक नदी केरिस में सिंध से अपने संगम स्थल तक पश्चिम-उत्तर-पश्चिम की दिशा का अनुसरण करती हुई लगभग 242 किलोमीटर की यात्रा करती है। काराकोरम स्थित अपने स्रोत से लेकर केरिस में सिंध से अपने संगम स्थल तक शायोक नदी की लंबाई लगभग 644 किलोमीटर है। सिंध से संगम होने से पहले शायोक नदी सियाचन हिमनदी से उत्पन्न नूबरा नदी के जल को ग्रहण करके दक्षिणी दिशा में प्रवाहित होती है। अपनी इस यात्रा के दौरान यह नदी नूबरा घाटी और बाल्तीस्तान के खपलू क्षेत्र के बीच एक जलमार्ग का निर्माण करती है। सर्दियों में जब शायोक नदी का पानी जम जाता है, तब उसकी बर्फ़ीली सतह खपलू और नूबरा घाटी के बीच एक आसान मार्ग का रूप ले लेती है। गर्मियों में पहाड़ों एवं हिमनदियों से पिघलते हिम के कारण नदी का पानी किनारों से भी ऊपर बहकर, आसपास की समतल भूमि को ढँक लेती है, जिससे एक उग्र समुद्र का-सा दृश्य देखने को मिलता है।

शायोक की सामान्य प्रवृत्ति सिंध नदी के विपरीत है। अपने आरंभिक चरण में जब वह एक संकीर्ण घाटी से होकर गुज़रती है, तब उसका स्वभाव उग्र रहता है

लेकिन मध्य चरण में खुली घाटी में पहुँचने पर अनेक नलिकाओं में बँट जाने के कारण वह उग्र नहीं रह जाती और कम जल होने के कारण कई स्थलों पर आसानी से पार की जा सकती है। तेरसे से उदमारू की अपनी यात्रा में शायोक सात शाखाओं में बँट जाती है, जिनमें से तीन 300 से 400 फ़ीट चौड़ी है जबकि अन्य चौड़ाई में कम हैं और लगभग दो ही फ़ीट गहरी हैं। तुरतुक पुल पर नदी केवल 70 फ़ीट चौड़ी है और तेज़ प्रवाह एवं उग्रता के साथ चट्टानों के बीच प्रवाहित होती है।

सुरु नदी

पेन्ज़ेला दर्रे की चोटी पर ताज़ा पानी के दो चश्मे हैं। किंवदन्ती है कि ज़ांग्स्कर नस्ल के नामी टट्टुओं की प्रजाति यहीं से उत्पन्न हुई थी। इस दर्रे के दुर्गम मार्ग से उतरते हुए यात्री दर्रे के बाईं ओर पहाड़ों में जड़ी हिमनदी के दर्शन करता है। यह हिमनदी उत्तर अक्षांश 34 और पूर्व मध्याह्नरेखा 76 पर स्थित है। यह कई सारी छोटी नदिकाओं और नालों को जन्म देती है। ये नदिकाएँ इस जलसंभर के ढालों से उत्तर और दक्षिण में बहती हैं। जो नदिकाएँ उत्तर की ओर बहती हैं वे अपना जल आपस में मिलाकर सुरु नदी का निर्माण करती हैं जिसकी लंबाई लगभग 97 किलोमीटर है और जो उत्तर-उत्तर-पूर्व दिशा से होकर बहती है। अपनी मज़बूत छाती पर तंगोल गाँव लगभग पाँच किलोमीटर लंबी हिमनदी को उठाए हुए है जिसे पार करके ही यहाँ से किश्तवाड़ पहुँचा जा सकता है। प्रसिद्ध नुन-कुन चोटियों की तलहटी में पहुँचकर सुरु नदी एक अद्भूत गुमावदार मोड़ लेती है, जिसके विषय में *डॉ. नेव* कहते हैं, "इस मोड़ पर नदी द्वारा एक गहरे एवं सँकरे गड्ढे का निर्माण हो गया है जो 300 गज़ तक चट्टानों और मलबे की छत से ढँका हुआ है।" इस बिंदु पर सुरु नदी गहरी सँकरी खाई से होती हुई एक पुल के नीचे से गुज़रती है जो छोटी लेकिन मज़बूत है। सुरु नदी कई सारी नदिकाओं को अपने में समेटती हुई अपनी लंबी यात्रा को नूरला में विराम देती है जहाँ सिंध से उसका संगम हो जाता है। सुरु घाटी कारगिल तहसील की सीमा से सह-विस्तृत है। कारगिल शहर से लगभग दो किलोमीटर आगे, नदी पर एक झूला-पुल तैयार किया गया है और शहर

का बाज़ार नदी की बाईं ओर एक घाटी में सिमटा हुआ है।

हिमनदियों एवं पर्वतों के हिम के पिघलने के साथ सुरु नदी का रंग धूसर, कीच भरा हो जाता है जो अक्सर लगभग काला भी नज़र आता है। नदी का यह रूप सितंबर से लेकर गर्मियों के आगमन तक के उसके सम्मोहक नीले एवं हरे रंग से आश्चर्यजनक वैषम्य रखता है। परन्तु चाहे गर्मी हो या सर्दी, इसका जल हाज़मे की ताकत के लिए प्रसिद्ध है, हालाँकि एक गिलास पीने के पानी में मिट्टी के कणों को तैरते हुए साफ़ देखा जा सकता है।

द्रास नदी

द्रास कस्बा अपनी समतल, खुली भूमि, मजनू के पेड़ों एवं द्रास नदी के समीप स्थित होने के कारण शरद्काल में एक सुखद ग्राम्य विश्राम स्थल प्रस्तुत करता है। हालाँकि सर्दियों में इसका रूप अत्यधिक हिमपात एवं दूसरे क्षेत्रों की तुलना में न्यूनतम तापमान होने के कारण विषम हो जाता है।

द्रास नदी माचोई हिमनदी से उत्पन्न होती है जो ज़ोजीला दर्रे के पास स्थित है और लगभग 137 किलोमीटर लंबी है। यह उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बहती है और अपनी यात्रा के दौरान आसपास स्थित दूसरे हिम-क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाले अनेक जल स्रोतों से जुड़ती जाती है। इनमें से एक उत्तर से आती शिगर नदी है जो गर्मियों में बड़ी मात्रा में जल लेकर गरजन करती और फ़ैन उगलती हुई प्रवाहित होती है और कारगिल के बाह्यांचल में खारुल के पास सुरु से मिल जाती है। यह सम्मिलित नदी कारगिल के पास खुकसर नदी से मिलती है और अंततः मूरल के पास सिंध से जुड़ जाती है।

अपनी दो उपनदिकाओं शिगर एवं शिंगो के द्वारा द्रास नदी देवसाई की समतल भूमि से और ज़ोजीला के उत्तर में स्थित पहाड़ों के ढलानों से होकर गुज़रती है। इसकी प्रमुख उपनदिका सुरु है जो ज़ांग्स्कर नदी की तरह पहले हिमालय की तरफ़ बहती है लेकिन बाद में इस शृंखला से परे होकर बहने लगती है।

झीलें

लद्दाख में जल के हर स्रोत जैसे तालाब, झील और समुद्र आदि को एक ही नाम 'त्सो' (Tso) से जाना जाता है। इसलिए मानसरोवर झील को 'त्सो माफम', जंगली घोड़ा तालाब को 'क्याङ् त्सो' और समुद्र को 'ग्या त्सो' कहा जाता है। लद्दाख की प्रमुख झीलों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

त्सोमोरीरी झील

इस झील को पहाड़ी झील भी कहा जाता है। यह झील उत्तर से दक्षिण तक लगभग 24 किलोमीटर लंबी, चार पाँच किलोमीटर चौड़ी और 100 फ़ीट गहरी है। रुपशो का केन्द्र कोरज़ोक त्सोमोरीरी झील से लगभग आठ किलोमीटर दक्षिण में है और चङ्थङ् में स्थित गंधक की खानों से लगभग 36 किलोमीटर दूर है। यह झील रुपशो के बीचोंबीच समुद्रतल से 15,000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। इसका नाम पहाड़ों के बीच उसके स्थित होने से जुड़ा हुआ है जो इसे घेरकर बंद किए हुए हैं। लद्दाख की झीलें स्थल-रुद्ध होने के कारण सामान्यतः खारी हैं और त्सोमोरीरी झील इसका अपवाद नहीं है। मनुष्य के लिए इसका जल अनुपयुक्त है, परन्तु याक, घोड़े और अन्य जानवर इसे पीते हैं। *ट्रेबेक* के अनुसार यह झील मई के महीने में भी थोड़ी जमी होती है और चलकर पार की जा सकती है। इसका जल पारदर्शी और गहरे नीले रंग का है और सर्दियों में जमे होने के कारण मवेशी चलकर इसे पार करते हैं। लवण-द्रव्य के धब्बे यहाँ-वहाँ देखे जा सकते हैं। इस झील का नमक *हाइड्रोक्लोरेट ऑफ सोडा* (Hydroclorate of soda) और *हाइड्रोक्लोरेट ऑफ मेग्नेशिया* (Hydroclorate of Magnesia) है। झील में हालाँकि मछलियाँ नहीं हैं लेकिन इसके उत्तरी छोर पर जंगली मुर्ग़ियाँ पाई जाती हैं।

पंगोङ् झील

पंगोङ् झील लेह से लगभग 209 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में चङ्ला दर्रे के पास स्थित

है। यह लद्दाख की सबसे लंबी झील है। इसका जल पारदर्शी लेकिन खारा है। माना जाता है कि इस झील का जल किसी समय में स्वच्छ हुआ करता था।

पंगोङ् नाम से परिचित झीलों की सूची लगभग 145 किलोमीटर तक फैली हुई है, इनमें से प्रमुख झील लगभग 65 किलोमीटर लंबी है और लगभग सात से बारह किलोमीटर चौड़ी है। झील का अधिकतर भाग लद्दाख में और कुछ भाग तिब्बत में है। यह एक लवण झील है। यह झील अपने में अलौकिक रंग समेटे हुए है जो आकाश में सूर्य के बढ़ने के साथ-साथ या किसी बादल के झील के ऊपर से गुज़रने पर सुन्दर हरे और नीले रंगो में परिवर्तित होता रहता है।

झील के उत्तर-दक्षिणी सीमा स्थित सुदूर पर्वत-शृंखलाएँ चूने के पत्थर से निर्मित हैं जिनसे झील का जल प्रभावित होता प्रतीत होता है।

पन्लुक और त्सोकर झील

लेह से लगभग 129 किलोमीटर दक्षिण में तगलङ् दर्रे के समीप थुकजे स्थित है। यह लवण-झील घाटी का केन्द्र स्थल एवं चङ्थङ् पठार के सबसे ऊँचे आबाद क्षेत्र रुपशो का सर्वाधिक खुला स्थान है। यह घाटी लगभग 21 किलोमीटर लंबी है और इसकी अधिकतम चौड़ाई आठ मील है। इस घाटी में दो झीलें हैं– पन्लुक और त्सोकर। पहली लगभग दो वर्ग किलोमीटर एवं दूसरी लगभग 12 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल को घेरे हुई है। पहली झील ताज़े पानी की है और दूसरी खारे पानी की। ताज़े पानी वाली झील को थुकजे के पास स्थित चश्मे भरते हैं। लवण-झील के उत्तरी किनारों पर अशुद्ध नमक जमा हो जाता है जिन्हें चङ्पा लोग एकत्र करते हैं। पहले यहीं नमक समस्त लद्दाख में इस्तेमाल होता था और कश्मीर भी भेजा जाता था।

त्सोकर या 'सफ़ेद झील' थुकजे छेनमो के बीच स्थित है। चम्बा और बिसाबार के हिन्दू इसे 'खाओरी तालाब' अर्थात् लवण-झील कहते हैं। यह झील त्सोमोरीरी झील के उत्तर-दक्षिण में लगभग 49 किलोमीटर की दूरी पर, समुद्र तल से 15,684 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। यह समरूपाकार नहीं है। पूर्व से पश्चिम

तक इसकी सबसे अधिक लंबाई लगभग आठ किलोमीटर और अधिकतम चौड़ाई चार किलोमीटर के लगभग है। इसके दक्षिण-पूर्वी छोर पर ताज़े जल वाली एक झील का पानी एक छोटी से नलिका के द्वारा इसमें आ मिलता है। झील के दक्षिणी छोर के लगभग मध्य में पानी बहुत गहरा है। जबकि उसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा. ओं पर वह सतही है। झील का पानी बहुत खारा और कड़वा है और इसका दक्षिण-पूर्वी किनारा नमक के

कणों से झिलमिलाता रहता है। इसके आसपास जंगली हंस और अन्य कई तरह के पक्षी भी अक्सर पाए जाते हैं। त्सोकर के दक्षिण में एक छोटी सी छिछली झील भी है जो अपना जल त्सोकर में उडेलती है। यह झील क्याङ् या जंगली घोड़ों का प्रिय बसेरा है।

युनम-त्सो झील

यह ताज़े जल की एक झील है। यह झील युनम नदी के तल में स्थित है जो इससे होकर बहती है। यह 1000 ग़ज लंबी और 500 ग़ज चौड़ी है। *कनिंघम* का मानना है कि पहले यह झील अधिक क्षेत्रफल की और वर्तमान से अधिक गहरी रही होगी। *मूरक्रोफ़्ट* की जानकारी अनुसार यह झील पहले बड़ी अवश्य रही होगी परन्तु बड़ी-बड़ी चट्टानों के फिसलकर इसमें भर जाने के कारण सिकुड़ गई होगी। *मूरक्रोफ़्ट* के मूल्यांकन के अनुसार, एक समय में इस झील की लंबाई लगभग पाँच किलोमीटर और चौड़ाई लगभग दो किलोमीटर से अधिक रही होगी।

अन्ले-त्सो झील

अन्ले-त्सो लद्दाख की सबसे बड़ी ताज़े पानी की झील मानी जाती है। हालाँकि इसका खुला जल अधिक नहीं है लेकिन इसका दलदल लगभग सात किलोमीटर तक फैला हुआ है। इस झील के कई स्रोत हैं जैसे कोङ्रा छू नामक एक नदिका और रुपशो को चीन के चुमूर्ति ज़िले से अलग करने वाली पर्वत शृंखला से होकर बहने वाली एक सहायक नदी। इस झील को भरने वाली तीसरी नदिका उत्तर-पश्चिम से आती है। अन्ले मठ झील के पूर्व में एक पहाड़ी पर स्थित है। माना जाता

है कि किसी समय में यह झील अन्ले के दक्षिण दिशा में फैले क्षेत्र को घेरे हुए थी और इसलिए काफ़ी बड़ी थी।

क्यागर-त्सो झील

त्सोमोरीरी झील से लगभग 13 किलोमीटर उत्तर में क्यागर-त्सो झील है जो लगभग चार किलोमीटर लंबी, लगभग दो किलोमीटर चौड़ी और 67 फ़ीट गहरी है। इसका जल नमकीन है इसलिए मनुष्य के लिए अनुपयुक्त है।

त्सो-रुल झील

त्सो-रुल झील या कड़वा झील पंगोङ् झील के दक्षिण में लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह लगभग 26 किलोमीटर लंबी और लगभग चार किला. `मीटर चौड़ी है। इसका जल बेहद कसैला है, जैसा कि इसके नाम से पता चलता है। हालाँकि यह माना जाता है कि पहले कभी इसका जल ताज़ा रहा होगा।

हिमनदियाँ

बिआफ़ो हिमनदी

यह हिमनदी काराकोरम शृंखला के दक्षिणी ढालों पर बाल्तीस्तान में स्थित है और काफ़ी लंबी है। लगभग 60 किलोमीटर लंबी यह हिमनदी एक विशाल द्रोण से उत्पन्न होती है। हिमनदी का यह विशाल क्षेत्र वनस्पतिक आवरण से हीन है। इस हिमनदी तक लद्दाख के स्कर्दू क्षेत्र से होकर पहुँचा जा सकता है।

चोङ् कुमदन हिमनदी

यह हिमनदी काराकोरम शृंखला की निचली ढालों पर लद्दाख के बाल्तीस्तान क्षेत्र में स्थित है। इससे पिघलता जल शायोक नदी में मिल जाता है जो अंत में सिंध से एक हो जाती है।

अतीत में कई बार इस हिमनदी ने शायोक नदी के प्रवाह को बाधित किया था। जिस कारण गपशन झील अस्तित्व में आया। परन्तु हिमनदी के बाँध के नष्ट

हो जाने पर यह झील भी रिसती गई। इस हिमनदी तक भी स्कर्दू से होकर पहुँचा जा सकता है।

गाशरबुम हिमनदी

काराकोरम की दक्षिणी ढालों पर ही यह हिमनदी भी स्थित है। यह गाशरबुम चोटी के ठीक तल पर स्थित है और 26 किलोमीटर लंबी है। इस हिमनदी का पिघलता जल शायोक नदी समूह में जा मिलता है। जलवायु की अत्यंत विषम दशा के कारण यह क्षेत्र हरियाली विहीन है।

हिसपर हिमनदी

यह हिमनदी भी काराकोरम श्रृंखला की दक्षिणी ढालों पर बाल्तीस्तान में स्थित है। यह लगभग 60 किलोमीटर लंबी है और हिमालय की विशाल हिमनदियों में से एक है। यह हिमनदी शिगर नदी की मुख्य धारा को भरती है जिसका अंत में सिंध में विलयन हो जाता है। इस हिमनदी का स्रोत हारामोश गिरि के उत्तरी ढालों पर स्थित घाटीय हिमनदियाँ और कनजुट-सर गिरि की दक्षिण मुखी ढालें हैं।

इस हिमनदी के केन्द्र में एक विस्तृत हिमक्षेत्र है और उसके किनारों पर बड़े हिमशैलों के टकराने के कारण बना मलबा जमा है।

नूबरा हिमनदी

नूबरा हिमनदी भी लद्दाख के काराकोरम श्रृंखला में स्थित है। यह विस्तृत हिमनदी ऊँची चोटियों के बीच एक भव्य रंगभूमि की तरह है। यह नूबरा नदी का स्रोत है जो अपना जल शायोक नदी में उडेलती है।

सासेर-ला गिरि की घाटीय हिमनदियाँ और काराकोरम श्रृंखला की दक्षिण-पूर्वी उपत्यका पर स्थित हिमनदियाँ जाकर मुख्य हिमनदी में खुलती हैं। नूबरा हिम. नदी को विस्तृत हिमक्षेत्रों वाली निलंबी घाटियों में स्थित छोटी हिमनदियाँ भी भरती हैं। यह हिमनदी हिमरेखा से ऊपर स्थित है और ठंड के कारण हरियाली विहीन है।

राकापोशी हिमनदी

यह हिमनदी लद्दाख के गिलगिट क्षेत्र के काराकोरम श्रृंखला में स्थित है। हुनज़ा नदी की एक उपनदिका को यहीं हिमनदी भरती है, जिसका जल अंततः सिंध से मिल जाता है।

राकापोशी हिमनदी का मुख लंबा एवं सँकरा है जिसका तल उत्तर एवं उत्तर दक्षिण की ओर झुका हुआ और चट्टानों एवं पत्थरों से बिखरा हुआ है। गिलगिट से होकर यहाँ पहुँचा जा सकता है।

त्सलतोरो हिमनदी

काराकोरम श्रृंखला की दक्षिणी ढालों पर स्थित यह हिमनदी अपने पिघलते जल को एक छोटी-सी नाली के द्वारा त्सलतोरो नदी तक पहुँचाती है, जो बाद में शायोक नदी से मिल जाती है। मुख्य हिमनदी को निलंबी घाटियों की उप हिमनदियाँ भरती रहती है।

ओमासी हिमनदी

ओमासी हिमनदी लद्दाख में स्थित मुख्य हिमालय पर्वत श्रृंखला के उत्तरी ढाल पर विद्यमान है। यह आकार में लंबी है। इसका मध्यभाग चौड़ा एवं बाकी भाग सँकरा है। यह ज़ांग्स्कर नदी की मुख्य धारा का स्रोत है जिसका सिंध नदी में विलयन हो जाता है।

सियाचन हिमनदी

सियाचन नूबरा घाटी में अति-महत्त्वपूर्ण भारत-पाक सीमा के पास स्थित है। काराकोरम श्रृंखला के सामने स्थित यह हिमनदी 72 किलोमीटर तक फैली सबसे बड़ी हिमनदी है। विभिन्न परिमाणों वाली अनेक उप-हिमनदियाँ इस मुख्य हिमनदी में खुलती हैं। सर्दियों में कई हफ़्तों तक निरंतर हिमपात होने के कारण इस क्षेत्र में अंतहीन हिमक्षेत्र का मनोरम दृश्य देखने को मिलता है।

शायोक नदी की प्रमुख उपनदिका नूबरा नदी विशाल पर्वतों के बीच स्थित सियाचन हिमनदी से उत्पन्न होती है। नूबरा और शायोक नदी के बीच स्थित काराकोरम श्रृंखला में प्रमुख चोटियाँ 24,000 फ़ीट से 25,000 फ़ीट तक की ऊँचाई के है। सर्दियों में सियाचन हिमनदी में तापमान अविश्वसनीय ढंग से शून्य से 50 डिग्री सेल्सियस नीचे तक भी गिर जाता है, जिससे मनुष्य जीवन का यहाँ टिक पाना एक विकट चुनौती बन जाता है।

वन्यजीवन एवं संरक्षित क्षेत्र

वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम 1972 और केन्द्र एवं राज्य स्तरों पर वन्यजीवन सलाहकार समिति के गठन ने हिमालय के वन्यप्राणियों के संरक्षण एवं संचालन में सहायता पहुँचाई है। ये विधान वन्यजीव संचालन, वन्यजीवों के शिकार, पक्षी अभयारण्य और राष्ट्रीय प्राणी उद्यानों में पशु-चर्म के व्यापार आदि से संबंधित है। केन्द्रीय स्तर पर प्रधान वन निरीक्षक द्वारा निर्देशन एवं निरीक्षण किया जाता है जोकि पिछले कुछ सालों में राष्ट्रीय महत्त्व का दर्जा पा चुका है। वन्यजीवों की घटती जनसंख्या के चलते यह और महत्त्वपूर्ण हो गया है। राज्य स्तर पर हिमालय में स्थित प्रत्येक राज्य के पास अपना वन्यजीव विभाग एवं राष्ट्रीय प्राणी उद्यान है। हिमालय के आँचल में वन्यजीव संरक्षण एवं संचालन के प्रमुख उद्‌देश्य निम्नलिखित है–

1. वैज्ञानिक ढंग से वन्यजीवों का प्रबंधन।
2. लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण, सुरक्षण एवं विस्तारण को सुनिश्चित करना।
3. वन्यजीवों की सुरक्षा एवं संरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए, इससे संबंधित निर्धारित नियमों के प्रवर्तन पर सतर्कता से निगरानी रखना।
4. हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण, परिस्थितिकी एवं वन्यजीवों के संरक्षण एवं सुरक्षा के लिए इन क्षेत्रों में कम-से-कम एक संरक्षित क्षेत्र का होना अनिवार्य है।

जहाँ तक जम्मू कश्मीर के लद्दाख की बात है, इस विशाल क्षेत्र की आड़ी-तिरछी पहाड़ियों पर वानस्पतिक आवरण न के बराबर है।

लद्दाख के पशु-पक्षियों का अब तक विस्तार से अध्ययन नहीं हो पाया है। हालाँकि इस बीहड़ क्षेत्र में आए हुए कुछ विदेशी यात्रियों ने यहाँ के कुछ पशु-पक्षियों की पहचान की है परन्तु इस दिशा में बहुत कुछ करना अभी शेष है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लद्दाख, तिब्बत, मंगोलिया एवं मध्य एशिया के बीच वन्यजीवन की अनेक समानताएँ पाई जाती है। संप्रति निम्नलिखित पशु-पक्षियों की पहचान लद्दाख में हो चुकी है।

पक्षी

हिमालय पक्षियों की कई प्रजातियों का घर है जिनमें से कुछ प्रवासी हैं और कुछ आवासी। सर्दियों में प्रवासी पक्षी इस क्षेत्र से अधिक उष्ण जलवायु की ओर प्रस्थान करते हैं। पक्षियों का प्रवासन भारतीय एवं तिब्बती भूमि के बीच एक संबंध स्थापित करता है। इस श्रेणी में हूपो या हुदहुद (उतुतुत्से)[2], द ब्राउन हेडेड गल या भूरे सिर वाला समुद्री पक्षी (न्यासगर)* और इंडियन रेडस्टार्ट (सिनतिक)* आदि के नाम प्रमुख है। ब्राउन हेडेड गल गर्मियों में चङ्थङ् के ताज़े जल वाली झीलों और सिंध नदी के ऊपर मँडराते हुए दिखते हैं और लद्दाख में सर्दियों के आगमन के साथ ही भारत के तटीय क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करते हैं। लद्दाख में पाए जाने वाले अन्य प्रवासी पक्षियों में ब्रहमीनि डक या ब्रहमीनि बतख़ (मुरू)*, द बार हेडेड गूस या बार हेडेड हंस (ङङ्पा)* और द ग्रेट क्रेस्टेड ग्रीब या पनडुब्बी (चङ्गा रङ्केस्त)* आदि है जो चङ्थङ् में अपना वंश बढ़ाते हैं और ताज़े पानी वाले क्षेत्रों में अंडे देना और रहना पसंद करते हैं।

पंगोङ् झील के पास स्थित सीमावर्ती क्षेत्र छुशुल और लद्दाख की पूर्वी सीमा पर स्थित अन्ले कुछ अन्य रोचक प्रजातियों का घर है जैसे 'द ब्लेक नेक क्रेन'

[2] पक्षियों के स्थानीय नाम

अर्थात् तिब्बती सारस या काले गर्दन वाला सारस (चा ठुङ् ठुङ् करमो)* जो ऊँचे क्षेत्रों में रहने वाला एक पक्षी है। इसका प्रवासन क्षेत्र भी सीमित होता है। ऐसा माना जाता है कि इस पक्षी की प्रजाति का बच पाना, विशेषकर लद्दाख में मुश्किल है।

लद्दाख में तिब्बती प्रजाति के पक्षियों को दो वर्गों में बाँटा जाता है। वे जो एशियाई इलाकों में रहना पसंद करते हैं और वे जो लद्दाख जैसे सूखे क्षेत्रों में रहना पसंद करते हैं। पहले वर्ग में टिबेटन क्रेन या तिब्बती सारस (चा ठुङ् ठुङ्)* टिबेटन रेवन या तिब्बती जंगली कौआ (चुङ्का)*, द रेड बिल्ड चफ़ या लाल चोंचदार कौआ (चुङ्का खामर)*, द बेकट्रीयन मैगपाई या मुटरी (खटङ् पुटित)* स्नो कॉक या हिम-मुर्ग़ (टीकोक, रिबजा)[3] और माऊनटेन पेट्रिज या पहाड़ी तीतर (स्रगपा)* आदि आते हैं। अन्य प्रजातियों में चकोर या स्नो फ़ेज़न्ट लाहौल, स्पीति और किन्नौर में हिमरेखा के आसपास मिलते है। चकोर की सामान्य प्रजाति यहाँ के कृष्ट क्षेत्रों में हर कहीं देखने को मिलती हैं। *मूरक्रोफ़्ट* ने इस पक्षी को फ़्रैंकलिन और ग्रीक चकोर के समान माना है। *कनिंघम* ने कुछ अन्य छोटे पक्षियों को भी देखा परन्तु उनका निकट से अध्ययन नहीं कर पाए। हालाँकि उन्होंने भारत-तिब्बत सीमा के पास, लनक दर्रे के पश्चिम में, 16,500 फ़ीट की ऊँचाई पर एक हूपो या हुदहुद देखा, साथ ही ऊपरी सिंध की झीलों में छु-चा* अर्थात जल-मुर्ग, थुकजे छेनमो और त्सोमोरीरी झील में नङ्ग्योद नामक पक्षी को 15,000 फ़ीट की ऊँचाइयों पर पाया और अन्ले से नीचे सिंध के किनारों पर एवं लेह स्थित छुशोद के दलदलों में बतख़ एवं पनमुर्ग़ी देखे। अन्य पक्षी जैसे द व्हाइट आइड पोचर्ड या बुडार (घुसतत)* लद्दाख के आर्द्रप्रदेशों में पाया जाता है जबकि कॉमन मरगैनसर या कारण्ड, द बज़र्ड या टीसा (न्यासेर मुगपो)* और द लोंग बिल्ड कलान्ड्रा लार्क या लंबी चोंचदार कलान्ड्रा लार्क आदि क्रमशः 16,404 फ़ीट, 7,218 फ़ीट और 13,123 फ़ीट की ऊँचाईयों पर पाए जाते हैं। इनके अलावा कॉमन टार्न या कुररी लद्दाख की झीलों में अपना वंश बढाती है और शॉट टोड लार्क या बगेरी (चिपा-गुद)* भी

[3] पक्षियों के स्थानीय नाम

लद्दाख में अपना वंश बढ़ाती हैं और सर्दियाँ निचले हिमालयी क्षेत्रों में बिताती है। तिब्बती 'सैन्डग्रोस' या भाट तीतर (कालिङ् या कागालिङ्) भी लद्दाख में पाया जाता है।

लद्दाख में ऐसे पक्षी भी हैं जो सूखे क्षेत्रों में रहना पसंद करते हैं जैसे– सैन्डग्रोस, सैन्डप्लोवर, डेसर्ट वीटर, होंड लार्क और टर्टल आदि। बेक्ट्रीयन मैगपाइ लद्दाख के पक्षियों में से सबसे अलग और विशेष प्रजाति है जो दिखने में बहुत सुन्दर होती है। लद्दाख में बड़ी संख्या में पाए जाने वाले पक्षी जैसे गौरैया, कौआ और चकोर आदि इंसानी आबादी के आसपास रहते हैं जबकि बेक्ट्रीयन मैगपाई खेतों को अपना घर बनाती है। पाइड वेगटेल (स्तरज़ी)* सामान्यतः जल स्रोतों के आसपास नज़र आते हैं। कौआ, मुटरी और गौरैया आदि लद्दाख की सर्दी को नहीं झेल पाते अतः इन कठिन महीनों के दौरान उष्ण क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करते हैं। पहाड़ी कबूतर या हिल पिजन (फुरगोन)* सर्दियों में कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उतर आते हैं जबकि बिअर्डिड वलचर या गिद्ध (थङ्कर)[4] और ईग्लस या गरूड़ (ल्हाक) ऊँचे आकाश में शिकार की तलाश करते सतर्कता से मंडराते रहते हैं। सुरक्षा पाबंदी के बावजूद लद्दाख के सुगम क्षेत्र में असंख्य पक्षी शिकारियों का निशाना बन रहे हैं।

पशु

लद्दाख के पशु जिनमें वन्यजीव भी शामिल हैं, विविध एवं अद्भूत हैं। यह वन्यजीव पहाड़ों, सिंध घाटी के ऊँचे पठारों और रुपशो के हरे मैदानों में रहते हैं। इस क्षेत्र में दुर्लभ वन्यजीवों के बेलगाम शिकार के कारण भारी नुक़सान हुआ है जिसे जम्मू-कश्मीर के वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम, 1978 से कुछ राहत मिली है। फिर भी कुछ प्रजातियों का अत्यधिक शिकार होने के कारण उनकी संख्या में बहुत कमी आई है जैसे पहाड़ी बकरी और साह जो अब विलोपन के कगार पर खड़े हैं। लद्दाख के विभिन्न पालतू एवं वन्यजीवों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

[4] पक्षियों के स्थानीय नाम

याक

यह लद्दाख का प्रतिनिधि पशु है। 12000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित इस क्षेत्र के ठंडे उजाड़ में याक दुरारोह ढालों पर चट्टानों के बीच उगे घास को खाकर अपने जीवन निर्वाह के लिए स्वयं जूझता रहता है। जल के अभाव में वह बर्फ़ खाकर खुश रहता है। याक के शरीर की बनावट काफ़ी मज़बूत और सुडौल होती है लेकिन वह आकार में छोटा होता है, उसके सींग भी छोटे-छोटे होते है और आँखें डरावनी होती हैं। याक के रेशमी काले बाल जमीन को छूते हैं। हल के लिए उपयुक्त न होने के कारण याक को बोझ ढोने के कार्य में लगाया जाता है। जो महत्त्व आइसलैंड के लोगों के लिए रेन्डियर हिरण का है, या अरब के निवासियों के लिए ऊँट का है, वहीं महत्त्व विस्तृत चङ्थङ् पठार के निवासी चङ्पाओं के लिए याक का है। *हाइड* ने इस पशु को 'बकरी, घोड़ा और बैल' का अद्भुत मिश्रण माना है और साथ ही इसे तिब्बती लोगों की सबसे बड़ी पूँजी कहा है।

याक की पूँछ को पवित्र माना जाता है। चाँदी के मूठ में इसे कुशलतापूर्वक जड़ाकर गुरु ग्रंथ साहिब के ऊपर चँबर की तरह झौला जाता है।

चङ्पाओं के लिए याक एक अति महत्त्वपूर्ण पशु है जिसे वे सामान ढोने के लिए इस्तेमाल करते हैं, जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ है। याक की बोझ ढोने की क्षमता अद्भुत होती है। याक और गाय के मेल से उत्पन्न संतान को ज़ो और मादा संतान को ज़ोमो कहते है। ज़ो दिखने में याक से बड़ा होता है परन्तु आकार और बल दोनों में ही यह याक से हीन ही लगता है। पालतू होने के कारण ज़ो को समस्त लद्दाख में हल जोतने और बोझ उठाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। दूसरी ओर ज़ोमो भी गाय से अधिक और अच्छा दूध देती है जिससे लद्दाखी गुर-गुर चाय[5] में इस्तेमाल करने के लिए मक्खन निकालते हैं। ज़ोमो की छाती, गले और पेट के गरम, मुलायम बाल को रस्सी बनाने, दरी बुनने और तंबू बनाने के लिए चङ्पा लोग इस्तेमाल करते हैं। ज़ो हालाँकि गाय से मेल खाता है परन्तु इस मेल से वह अपनी प्रजाति को आगे नहीं बढ़ा पाता। प्रकृति का विधान ही ऐसा है।

[5] लददाखी नमकीन चाय

लद्दाखी गाय की नस्ल आकार और उपयोगिता दोनों स्तर पर अपनी प्रजाति का एक कमज़ोर नमूना है।

ब्रोड् नामक जंगली याक का भी लद्दाख में पाया जाना माना जाता है। *कनिंघम* को दुःख हुआ था कि वे इस पशु के सींग नहीं खोज पाए और न ही ऐसे किसी व्यक्ति से मिल पाए जिसने सचमुच इस पशु देखा हो। *विन्ये* की सूचना अनुसार यह पशु जंगली याक जैसा दिखता है और यारकंद की समतल भूमि की ओर उतरते हिमालय के उत्तरी ढालों पर पाया जाता है।

भेड़

लद्दाख भेड़ की अनेक प्रजातियों से भरा हुआ है। सबसे बड़ी जंगली भेड़ जिसे 'न्यान' कहते हैं, हिम सीमा के पास अत्यंत दुर्गम स्थलों में विचरण करती है। तिब्बती न्यान बदाकशन और चित्राल के खच्चर से समानता रखता है। जंगली भेड़ की एक और प्रजाति को 'ना' कहते है जिसे *विन्ये* 'स्ना' कहते है। यह एक साधारण भेड़ जितनी और भूरे रंग की होती है। इसके सिंग मुड़े हुए, चार कोनों वाले होते हैं। हंगेरियन अन्वेषक *सोमा दे कोरोस* इसे एक विशाल भेड़-जैसा हिरण बताते हैं। भेड़ की एक और प्रजाति को *कनिंघम* ने झुंड में लेह से नीचे सिंध के बायें किनारे पहाड़ों पर देखा था। इसे शा कहते हैं और यह एक स्टैग हिरण जितना बड़ा होता है। "इसकी पीठ पर लाल-भूरे रंग के मज़बूत लंबे बाल होते हैं जो पेट की ओर सफ़ेद होते जाते हैं। इसकी छाती काले और धूसर बालों से ढकी हुई होती है।" *कनिंघम* ने इसके विशाल सींगों की माप ली थी जो दो फ़ीट और एक चौथाई इंच लंबी निकली। इसके सींग मुड़े हुए और आकार में गोल होते हैं।

लद्दाखी भेड़ की सामान्य प्रजातियाँ है– हुनिया और पुरिक। हुनिया आकार में बड़ी होती है। इसकी ऊँचाई लगभग 27 इंच से 30 इंच की और मुँह काले रंग का होता है। इसे सामान्यतः ऊँचे दुर्गम मार्गों पर, एक स्थान से दूसरे स्थान तक बोझ ढोने के काम में लाया जाता है जहाँ न याक, न ही मनुष्य आसानी से इतना श्रमसाध्य कार्य कर पाते हैं। भारी भरकम होने के कारण याक इस तरह का काम नहीं कर पाते और मनुष्य की क्षमता और शक्ति की अपनी सीमाएँ होती हैं। इस

तरह के कामों के लिए हुनिया भेड़ उपयुक्त होते हैं। इसलिए लद्दाखी इसे विशेष महत्त्व देते हैं। निसंदेह यह भारत के किसी अन्य भेड़ की नस्ल से बड़ी होती है। लद्दाख में जब संचार एवं परिवहन की सुविधाएँ विकसित नहीं हुई थीं तब यातायात में ये हुनिया महत्त्वपूर्ण योगदान देते थे। वे अपनी पीठ पर सामान ढोते हुए हजारों की संख्या में यात्रा करते थे। अपनी अकूत उपयोगिता के चलते, हुनिया भेड़ लद्दाखियों के लिए एक अमूल्य संपत्ति है। पुराने समय में किसी की संपत्ति का अनुमान उसके हुनिया भेड़ों की संख्या से लगाया जाता था। भेड़ की दूसरी नस्ल है पुरिक जो हुनिया से छोटी और दिखने में अधिक सुंदर होती है। इसे केवल इसके मांस और ऊन के लिए पाला जाता है। यह छोटी-सी भेड़ स्वादिष्ट मानी जाती है। *मूरक्रोफ़्ट* के शब्दों में, "इसका उत्तम और वज़नदार ऊन और इसके मांस का स्वाद अब तक पाए गए किसी भी नस्ल की टक्कर का है।" यह साल में दो मेमने देती है और साल में दो बार इसका ऊन उतारा जाता है।

बकरी

भेड़ के अलावा लद्दाख जंगली एवं साधारण बकरियों से भरा हुआ है। साकिन जंगली बकरी की एक नस्ल है जिसे तिब्बती आइबेक्स कहा जाता है। *विन्ये* के आकलन अनुसार, यह प्रजाति यूरोपीय आइबेक्स से बड़ी है और इसके सींग अधिक लंबे मुड़े हुए और पैने होते हैं। इसके सींगों का एक जोड़ा *विन्ये* को मिला था जो चार फ़ीट तीन इंच लंबा था– जो हर प्रकार से बड़ा ही कहा जाएगा। साकिन दुर्गम चट्टानों के बीच विचरण करता रहता है। बाल्तीस्तान में सर्दियों में जब वे पहाड़ों से नीचे उतर आते हैं तब लगभग 200 आइबेक्स मारे जाते हैं। व्यापारिक महत्त्व के चलते लद्दाख में भी इन्हें बक्शा नहीं जाता। पौ फटने के समय, जब ये पशु पानी पीने पहाड़ो के नीचे स्थित नदियों, नालियों पर उतरते हैं तब इनका शिकार किया जाता है। इनके चमड़े से सटे हुए कोमल भीतरी शहतूश ऊन के लिए इन्हें मारा जाता है। शहतूश भूरे रंग का होता है और इससे बेहतरीन शालें, जुराबे और दस्ताने बनाए जाते हैं। यह विशेष कोमल ऊन पशु को मारकर ही प्राप्त किया जा सकता है जिस कारण बहुत दुर्लभ और महँगा होता है। सुंदर प्राकृतिक रंग के कारण शहतूश को न रंगा जाता है और न ही उसपर कोई कलाकारी की जाती है। *मूरक्रोफ़्ट* ने

सही कहा था, "न तो शाल बनाने के लिए रखी गई घरेलू बकरियाँ न ही वाईकुन्य इतना भरपूर और उत्तम दर्जे का ऊन देती है और न ही इतने उत्तम ऊन ने कभी किसी ब्रिटिश करघे की शोभा ही बढ़ाई है।"

जंगली बकरी की एक और प्रजाति है मारख़ोर या स्नेक-ईटर। जंगली बकरी की यह प्रजाति लद्दाख और बाल्तीस्तान के वन्यजीवों में से सबसे आश्चर्यजनक प्रजाति मानी जाती है। यह कश्मीर के बनिहाल दर्रे के आसपास और हिन्दुकुश एवं काराकोरम शृंखलाओं के आसपास भी पाई जाती हैं। जंगली बकरी की इस प्रजाति के कई प्रकार हैं। पहली वह जिसकी सींगें कोर्कस्क्रू[6] के आकार की होती है और इसलिए इस नाम से भी यह बकरी जानी जाती है। यह पीर पंजाल पर्वत शृंखला में पाए जाने वाली मारख़ोर है। दूसरे प्रकार की मारख़ोर बाहर की ओर फैली सींगों वाली होती है जो अस्तोर में पाई जाती है। इसे अस्तोर प्रजाति का मारख़ोर भी कहते है। तीसरी है काबुल मारख़ोर जिसकी सींगें पतली और घुमावदार होती हैं।

मारख़ोर बकरी हिम रेखा के नीचे जंगल वाली ढालों पर रहना पसंद करती है जो उनके लिए चरागाह का भी काम करती हैं। ये खुले चट्टानी क्षेत्रों में भी रहती हैं। अन्य ख़ुरदार पशुओं की तरह मारख़ोर भी सवेरे और संध्या समय चरती है। लद्दाख में इस बकरी को हालाँकि किसी यात्री या प्रकृति वैज्ञानिक ने नहीं देखा।

लद्दाख की घरेलू बकरी का ऊन शालें बनाने के काम आता है। यह बकरी ऊँचाई पर स्थित क्षेत्रों जैसे नूबरा, ज़ांगस्कर और रुपशो में पाई जाती है। घरेलू बकरी का सबसे बढ़िया ऊन चङ्थङ् में मिलता है। शाल बनाने के काम में लाए जाने वाली बकरी के मेमने का ऊन बहुत कोमल, चमकीला और घुँघराला होता है और धनी लोग इसे अपने वस्त्रों के अंदर लगाकर इस्तेमाल करते हैं। इस बकरी के बाल साल में दो बार उतारे जाते हैं और इस कोमल ऊन को तुरंत खुरदरे बाल से

[6] शराब आदि की बोतल के मुँह को ढकने वाले कोर्क को निकालने वाला ओज़ार। यहाँ कुंडलीदार आकार के लिए प्रयोग हुआ है।

अलग किया जाता है। खुरदरे बाल से कंबल, तंबू और रस्सियाँ बनती हैं जबकि कोमल ऊन को पश्मीना शालें बनाने के लिए कश्मीर निर्यात किया जाता है।

रीबोङ् (Ribong)[6] / स्क्यङ्

रिबोङ् या 'पहाड़ी गधा' नील-धूसर रंग का होता है और रुपशो के घास-भरे मैदानों में पाया जाता है। इसके असाधारण लंबे साढ़े चार इंच के कानों के कारण ही इसका ऐसा नाम पड़ा। बाल्ती क्याङ् को गधे की नस्ल का मानते हैं इसलिए इसका मांस नहीं खाते। यह जीव चट्टानों के पीछे छिपा रहता है और उत्तेजित किए जाने पर एक चट्टान से दूसरे चट्टान के पीछे शरण लेने के लिए भागता है।

शू

इस पशु को तिब्बती बारहसिंहा भी कहते हैं क्योंकि यह तिब्बत के कुछ क्षेत्रों में भी पाया जाता है। सन् 1839 में *कनिंघम* को इसके सींगों का एक जोड़ा कश्मीर के लिदर घाटी के ऊपरी क्षेत्रों में मिला था। सन् 1847 में इसी घाटी से छोटी सींगों का एक जोड़ा भी उन्होंने प्राप्त किया। पहले वाली सींगों पर छः ठूँठ थे जिससे पता चलता है कि वह एक बारहसिंहा ही था। सींगों की लंबाई तीन फ़ीट और साढ़े चार इंच थी। जलवायु की शुष्कता के कारण लिदर घाटी को आधा तिब्बती भी कहा जाता है।

मार्मट

होड्जसन के अनुसार तिब्बत में मार्मट की दो प्रजातियाँ हैं जिनमें से एक बड़ी है और दूसरी छोटी। बड़ी वाली दो फीट लंबी होती है और उसकी पूँछ छः इंच लंबी हो सकती है जबकि छोटी प्रजाति की लंबाई 13 इंच से अधिक नहीं होती। बड़ी प्रजाति के मार्मट को रुपशो के रेतीले मैदानों में 7,874 फ़ीट से 14,108 फ़ीट की ऊँचाइयों पर देखा जा सकता है।

एनटिलोप

एनटिलोप हिरण लद्दाख के चङ् छेनमो घाटी में पाया जाता है। गर्मियों के आगमन

के समय जब बर्फ़ पिघलने लगती है तब यह हिरण चङ् छेनमो नदी के आसपास के समतल घास भरे मैदानों में देखे जा सकते हैं। वे गहरे गड्ढों में रहते हैं और संकट की आशंका होने पर भाग खड़े होते हैं।

तिब्बती चिंकारा

यह एक हट्टा-कट्टा जीव है जिसका रोमचर्म फीके रंग का होता है जोकि गर्मियों में हल्के भूरे रंग का हो जाता है। इसकी सींग सीधी परन्तु नोक पीछे की ओर मुड़ी हुई होती है। चिंकारा अपनी सुरक्षा के लिए झुंड में रहना पसंद करते हैं और ये झुंड में एक स्थान से दूसरे स्थान भोजन की तलाश में घूमते रहते हैं। गर्मियों में घास की टोह में ये हिम रेखा तक भी चले जाते हैं और सर्दियों में घाटियों में उतर आते हैं। संकट की आशंका होने पर ये चट्टानों के पीछे छिप जाते हैं।

साकिन

यह एक तगड़ा जानवर है जिसकी सींग पीछे की ओर मुड़ी हुई गर्दन तक पहुँचती है। नर पशु के दाढ़ी होती है और उसके बाल खुरदरे और भुरभुरे होते हैं। परन्तु उसके गर्मी के बाल काफ़ी घने होते हैं जिससे उसे कड़कती ठंड में पर्याप्त सुरक्षा मिल जाती है। गर्मियों में इसके रोमचर्म का रंग गहरा भूरा हो जाता है जिसपर यहाँ-वहाँ सफ़ेद धब्बे हाते हैं। ये घास, काई और झाड़ियाँ खाते हैं और गर्मियों में लगभग 50 के झुंड में ऊँचे पहाड़ो में विचरण करते हैं। संकट भाप लेने पर साकिन ऊँचे चट्टानों एवं ढालों के पीछे शरण लेते हैं।

साह

यह जीव सामान्यतः हिम रेखा के समीप 19,000 फ़ीट और 20,000 फ़ीट की ऊँचाइयों में रहता है परन्तु सर्दियों में लगभग 6,562 फ़ीट तक नीचे उतर आता है। यह भोर और संध्या समय शिकार करना पसंद करता है। इसके शिकारों में जंगली बकरियाँ, भेड़, कस्तूरी मृग, खरगोश, मार्मट, कृन्तक और बड़े पक्षी आदि आते है।

बनबिलाव

यह लद्दाख के सिंध घाटी के ऊपरी क्षेत्र में ठंडे रेगिस्तानी भू-भाग में पाया जाता है। गर्मियों में यह पशु 10,827 फ़ीट की ऊँचाइयों तक भी शिकार की तलाश में निकल जाता है। इस जीव की संख्या घटती जा रही है जिससे इसकी प्रजाति पर खतरा मंडराने लगा है।

लोमड़ी

यह बहुरंगा स्तनपोषी जीव लद्दाख के ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्रों में और हिमालय के कुछ अन्य क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी पूँछ की नोक सफ़ेद रंग की होती है। चट्टानी इलाके, कृष्ट क्षेत्र और जल वाले क्षेत्र इसके पसंदीदा निवास स्थल हैं।

लागोन्स (Lagonys)[7]

यह खरगोश की एक और प्रजाति है लेकिन सामान्य खरगोश से छोटी होती है।

तिब्बत और लद्दाख में यह हर कहीं पाई जाती है। इसे शिप्पी भी कहते हैं।

टट्टू

लद्दाख के टट्टू सामान्य टट्टू से आकार में छोटे होते हैं। पुराने समय में यारकंद से लद्दाख में टट्टू लाए जाते थे। ज़ांग्स्कर नस्ल के टट्टू हट्टे-कट्टे होते हैं और अपनी संतुलित चाल के लिए माने जाते हैं।

कुत्ता

लद्दाख में सामान्यतः कुत्तों के दो प्रकार मिलते हैं। ल्हासा अपसो, जो पालतू है, और दूसरा, निगरानी करने वाला कुत्ता। निगरानी करने वाले कुत्ते अधिकतर चरवाहों द्वारा अपने मवेशियों की रखवाली के लिए रखे जाते हैं। ये कुत्ते झबरे बालों वाले और आक्रमक स्वभाव के होते हैं परन्तु निगरानी के लिए उपयुक्त होते हैं।

संरक्षित क्षेत्र

लद्दाख में केवल एक ही संरक्षित क्षेत्र है जो हेमिस राष्ट्रीय प्राणी उद्यान के नाम से जाना जाता है। यह उच्च क्षेत्र में बना उद्यान सन् 1981 में लेह से 30 किला. `मीटर दूर लद्दाख के पूर्वी भाग में हेमिस के पास अस्तित्व में आया। यह मरखा और रुमबक घाटियों में 600 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल तक फैला हुआ है। यह क्षेत्र कुलमिलाकर ऊबड़-खाबड़ ही है। इस क्षेत्र में वनस्पतिक आवरण कम है हालाँकि ऊपरी ढालों पर पहाड़ी वनस्पतियों के आवरण पाए जाते हैं।

सर्दियों के दौरान उद्यान का इलाका अत्यधिक ठंड में जकड़ा रहता है जहाँ जूनिपर या हपुषा की सूखी झाड़ियाँ, अन्य सूखे वृक्षों से बना वन, अल्प-पर्वतीय घास भरे मैदान और सूखी पर्वतीय झाड़ियाँ, आदि पाए जाते हैं। उद्यान में साह, साकिन और भाराल आदि रहते हैं।

2

आरंभिक इतिहास

प्राप्त अभिलेखों के अनुसार, लद्दाख के राजा स्वयं को ड्री त्स्नपो के वंशज मानते हैं, जो *फ़्रैंकी* के अनुसार 200 या 300 ई.पू. में हुए थे। *फ़्रैंकी* का यह भी मानना है कि लद्दाख के प्राचीन युग को इतिहास नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह इतना प्रकट नहीं था। कदाचित् इससे 900 से 1400 ईस्वी के बीच किसी महत्त्वपूर्ण घटना के न होने के कारण का अनुमान लगाया जा सकता है। हालाँकि इस काल के बाद महत्त्वपूर्ण घटनाएँ प्रकट होती हैं। लद्दाख का द्वितीय एवं अंतिम राजवंश 'नमग्यल राजवंश' इसी समय के आसपास सामने आया। *फ़्रैंकी* के अनुसार, "राजाओं की इस नई पीढ़ी का झुकाव इतिहास के प्रति कदाचित् अधिक रहा होगा।"

लद्दाख के इतिहास की चर्चा दो स्पष्टतः भिन्न कालों के अंतर्गत की जा सकती है– 'पूर्वकाल' एवं 'उत्तरकाल'। यह विभाजन पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ। *मू. रफ़ोफ़्ट* के अनुसार, "लद्दाख का प्राचीन इतिहास और तिब्बत का इतिहास एक ही है क्योंकि लद्दाख को तिब्बत राज्य का ही एक भाग माना जाता था जिसकी सांसारिक बागडोर किसी स्वतंत्र शासक के हाथों में होती थी और धार्मिक बागडोर गुरू लामा या ल्हासा के प्रमुख लामा के हाथ में।"[7] *कनिंघम* का भी ऐसा ही विचार है परन्तु वे मानते हैं कि लद्दाख की तिब्बत पर निर्भरता वास्तविक न होकर नामिक अधिक थी। प्रोफ़ेसर *लुचिआनो पेटेक*[8] अपने गहन अध्ययन और विस्तृत शोध कार्य के आधार पर मानते हैं कि लद्दाख के लोग 950 ईस्वी के आसपास अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने से पहले, तिब्बत के शिथिल अधिराज्य में थे। असल स्थिति जो रही हो, नमग्यल राजाओं के शासन-काल में, विशेषकर सत्रहवीं शती में राजा सिंगे नमग्यल के शक्तिशाली शासन के समय, लद्दाख की अविवादित स्वतंत्रता का

[7] William Moorcroft and George Trebeck, Travels, vol I, P. 336

[8] L.Petech,Kingdom of Ladakh

निश्चयपूर्वक दावा किया गया और इसे मान्यता प्राप्त हुई। हालाँकि ल्हासा के साथ उसके संबंध इतने नज़दीकी और स्थिर रहे कि धार्मिक महत्त्व के हर मामले में लद्दाख ल्हासा की ओर निर्देश और मार्गदर्शन के लिए देखता था। दोबारा अवतरित लामाओं की खोज को निश्चित करने और धार्मिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण में अंतिम निर्णय ल्हासा का ही माना जाता था। लद्दाखी लामाओं का पाण्डित्य तिब्बत के किसी प्रसिद्ध मठ में बौद्ध शिक्षा की विभिन्न शाखाओं के विस्तृत पाठ्यकृत अध्ययन से आँका जाता था और सामान्य जनता जिनका लक्ष्य पाण्डित्य प्राप्ति नहीं था, अपने अध्यात्मिक घर अर्थात् ल्हासा के एक बार दर्शन करने के स्वप्न को मन में संजोए रखते थे।

लद्दाख के इतिहास की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन यहाँ उचित रहेगा। इस क्षेत्र में जगह-जगह कणाश्म के चट्टानों पर साकिन के और धनुष-बाण धारण किए हुए शिकारियों के जो चित्र मिलते हैं, इस ओर इशारा करते हैं कि लद्दाख में 4000 से 5000 वर्ष पहले भी मनुष्य का अस्तित्व था। ये चित्र बताते हैं कि कला, जो लद्दाखियों की अंतर्भूत विशेषता है धीरे-धीरे विकसित होती गई। लद्दाख के इतिहास की एक और विशेषता यह है कि यहाँ काफ़ी लंबे समय तक राजनीतिक स्वतंत्रता कायम थी। कश्मीर सिन्क्याङ् और तिब्बत के बीच लद्दाख ने मध्यवर्ती राज्य का पात्र निभाया। इससे क्षेत्र में शांति कायम रही। लद्दाख के नामी विचारक एवं इतिहासकार टाशी रबग्यस भी इस विचार का समर्थन करते हैं और यह निस: संदेह इस क्षेत्र के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है।

आरंभिक अधिवासी

'द लद्दाख क्रॉनिकल'[9] और कुछ अन्य स्रोतों से लद्दाख के प्रारंभिक इतिहास के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। पड़ोसी देशों के मुस्लिम इतिवृत भी इस क्षेत्र के राजनीतिक और अन्य मामलों के विषय में सूचना प्रदान करते हैं। जहाँ तक प्रारंभिक उत्प्रवासियों की बात है, यह लगभग निश्चित है कि लद्दाख के सबसे पहले उत्प्रवासी दरदिस्तान से आए दरद थे जो सिंध घाटी के निचले क्षेत्रों में स्थित

[9]राजवंशीय अभिलेख

द हनु, दरचिक्स और गरखोन गाँवों में बस गए जब पन्द्रहवीं शती में उनके स्वदेश में बौद्ध धर्म का स्थान इस्लाम ने ले लिया। अपने नए घर में उन्होंने बौद्ध धर्म के उसी रूप को जारी रखा जो उनके पुराने घर में प्रचलित था। परन्तु उनमें से कुछ द्रास में बस गए और इस्लाम को अपना लिया।

लद्दाखी लोगों के सामाजिक संगठन के करीबी अध्ययन के बाद *पेटेक* निश्चित रूप से कहते हैं कि इस क्षेत्र में विशाल स्तर पर उत्प्रवासन हुआ है और इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि दरदी लोग इस विशिष्ट सामाजिक संगठन की सबसे निचली परत हैं। इनके बाद करजा (कुल्लू) से मोन लोग आए जिन्होंने समाज में निम्न स्थान को स्वीकार किया जैसा कि आज तक प्रचलित है। वे सबसे पहले ग्या और बाद में रोङ्, शायोक, सकटी, टङ्त्से और दुरबुग में जा बसे। यहाँ आकर बसने वाली तीसरी प्रजाति तिब्बती मूल के मंगोल थे। ये आठवीं और नवीं शताब्दी में यहाँ आए और दसवीं शताब्दी में तिब्बत राज्य की स्थापना होने तक भी इनका आना जारी रहा। लद्दाख को अगर एक कलाकार की पच्चीकारी मान ली जाए तो यह जातीय समूह इस पच्चीकारी की सबसे मज़बूत लड़ी होगी। परन्तु *हेनरिक हेरर*[10] इस विषय में बिलकुल अलग मत रखते हैं। उनका मानना है कि तिब्बती चलवासी लद्दाख में बसने वाले सबसे पहले लोग थे और दरदी सबसे अंतिम– यह विचार सामान्य तौर पर मान्य नहीं है और *पेटेक* द्वारा तो बिलकुल नहीं, जो प्राचीन तिब्बत के इतिहास एवं संस्कृति के प्रमुख विशेषज्ञ माने जाते हैं।

मोन जाति का उद्भव और पतन

प्रथम मोन राजा ने ग्या को अपनी राजधानी बनाई और स्वयं ग्यलपोचो या महाराजा के नाम से जाना जाने लगा। उसके राज में उपरोक्त सारे गाँव थे जिनमें मोन जाति के लोगों का निवास था। परन्तु दसवीं शताब्दी की समाप्ति के आसपास खोतान के छापामारों ने इन लोगों की शांति भंग कर दी, इनपर बारंबार आक्रमण किए और चिकतन तक इन्हें खदेड़ा। इस प्रकार बड़ी संख्या में धन और बंदी लेकर अपने क्षेत्र लौट गए। परन्तु इस आक्रमक सेना की एक टुकड़ी रुकी हुई थी, जिसे

[10] Henrich Harrer, Ladakh

बाहर खदेड़ दिया गया। इससे खोतानी सेना के अहंकार को ठेस पहुँची और मोन सेना के हाथों अपनी हार का बदला लेने के लिए उसने एक और टुकड़ी भेजी। इस विकट समस्या का सामना करने के लिए ग्यलपोचो ने पुरंग के शासक स्कील्दे न्यीमागोन से हाथ मिलाया। इस संयुक्त सेना ने खोतानी सेना को हरा दिया। अपना आभार व्यक्त करने के लिए ग्यलपोचो ने स्कील्दे न्यीमागोन को मरत्सेलङ् से नीचे का क्षेत्र भेंट कर दिया जिसके अंतर्गत शे, छुशोद, ठिगसे, लेह और खलत्से तक का सारा क्षेत्र आता है।

तिब्बती शासन का प्रारंभ

उपरोक्त क्षेत्रों से ग्यलपोचो के शासन का हट जाना आगे चलकर उसके पूरे वंश के लद्दाख की राजनीतिक दृश्य से उन्मूलन का कारण बना। इससे संपूर्ण स्तोद मरयुल पर स्कील्दे न्यीमागोन द्वारा तिब्बती आधिपत्य स्थापित हो गया। तिब्बत के शासक हालाँकि अपने वंश पर गर्व करते थे परन्तु अपने पूर्वज राजा लङ् दरमा की कटु-स्मृति से दुखी हो जाते थे। लङ् दरमा को बौद्ध धर्म का जुलिएन द अपोस्टेट (Julian the Apostate)[8] माना जाता है। इस शासक ने राजा सोङ्त्सन गमपो के आठ पीढ़ी बाद गद्दी संभाली थी। यह बोन धर्म का समर्थक था और इसलिए तिब्बत से बौद्ध धर्म को मिटाने का कोई मौका इस राजा ने नहीं छोड़ा था। परन्तु अपने कुकर्मों की कीमत इसे 842 ईस्वी में लामा ल्हाचुंग पलजी(Lama lhachung palji)[9] के हाथों अपनी जान गवाँकर चुकानी पड़ी। लङ् दरमा की हत्या के बाद भ्रांति और राजनीतिक शून्यता का एक दीर्घ काल चला जो अंततः उसके परपोते स्कील्दे न्यीमागोन द्वारा लद्दाख में अपना राज्य स्थापित करने के साथ समाप्त हुआ। यह राज्य 'ल्हाछेन राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्कील्दे न्यीमागोन ने लद्दाख के संपूर्ण निर्जन क्षेत्र को मंगोली मूल के तिब्बतियों से आबाद कर दिया, जो यहाँ के जनसांख्यिकीय चित्र पर छा गए। जैसा की प्रचलित है, *कार्ल मार्क्स* और *ए.एच फ्रैंकी* लेह स्थित मोरेवियन मिशन के सदस्य थे। वे लद्दाख के इतिहास एवं परंपराओं के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं परन्तु इनका कमजोर पक्ष यह है कि वे प्रमुखतः लद्दाख क्रॉनिकल पर निर्भर करते हैं जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद सन् 1926 में *फ्रैंकी* ने अपनी पुस्तक 'ऐनटिक्विटीज़ ऑफ़ इन्डिया, टिबेट' के दूसरे खंड

में प्रकाशित किया। फिर भी प्रोफ़ेसर *लुचिआनो पेटेक* की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ़ लद्दाख'(940-1842 ईस्वी) अधिक तथ्यपूर्ण और व्यापक है इसलिए अधिक विश्वसनीय है।

स्कील्दे न्यीमागोन का राज्य मरयुल से लेकर कश्मीर की सीमा तक फैला हुआ था जिसके अंतर्गत पुरंग, गुगे, स्पीती, रुदोक आदि आते थे। न्यीमागोन के तीन पुत्र थे– स्पलगीगोन, टाशीगोन और देत्सुकगोन। राज्य का सबसे बड़ा भाग स्पलगीगोन को दिया गया जिसमें स्तोद मरयुल (ऊपरी सिंध घाटी) यानी रुदोक से कश्मीर, ज़ांग्स्कर से स्पीती तक का पूरा क्षेत्र आता था, टाशीगोन को पुरंग मिला और देत्सुकगोन के हिस्से में गुगे (चङ् छोक) आया। इस प्रकार स्पलगीगोन (990–1020 ईस्वी) के साथ लद्दाख के राजाओं का ऐतिहासिक क्रम शुरू हुआ जो अंततः सन् 1842 में डोगरा शासक गुलाब सिंह के वज़ीर ज़ोरावर सिंह के हाथों समाप्त हो गया। न्यीमागोन के वंश के प्रारंभिक राजाओं के विषय में उनके नामों के अतिरिक्त अधिक जानकारी नहीं मिलती। क्रॉनिकल का ऐसा दावा करना कि इस वंश में राजाओं का एक अटूट वंशक्रम चलता रहा, संदेहास्पद है क्योंकि इस क्रम में उत्पल नाम के राजा का भी उल्लेख मिलता है जो एक ग़ैर-तिब्बती नाम है और वंशक्रम में हस्तक्षेप पड़ने का संकेत देता है। दूसरी तरफ़ कुछ नाम बिलकुल छूट गए से प्रतीत होते हैं जिनका क्रॉनिकल के बाद के संकलनों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी ल्हाछेन राजवंश का लगातार नौ शताब्दियों तक राज किया जाना सिद्ध है जो सोलहवीं शती में नमग्यल राजवंश के उदय का साक्षी बना। यह युग स्वतंत्र राज्य के रूप में उभरते लद्दाख के लिए महत्त्वपूर्ण था।

ल्हाछेन राजवंश

ल्हाछेन राजवंश और नमग्यल राजवंश के शासक अपने धर्मोत्साह के कारण प्रसिद्ध थे, जैसा कि उनके नामों से जुड़े विभिन्न मठों और स्तूपों की स्थापना से प्रमाणित होता है। इनमें से कुछ राजाओं के शासनकाल में ऐतिहासिक महत्त्व की कई घटनाएँ घटीं और कुछ के शासन में कई जनोपयोगी कार्य संपन्न हुए। सामाजिक

ढाँचा सामंती था और शासकत्व वंशगत, जो ज्येष्ठाधिकार के सिद्धांत से परिचालित था। ल्हाछेन शासकों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

ल्हाछेन ग्यलपो (1100-1125 ईस्वी)

ल्हाछेन राज्य का प्रथम राजा ल्हाछेन ग्यलपो स्कील्दे न्यीमागोन से चार पीढ़ी बाद

का शासक था। उसने 1100 से 1125 ईस्वी तक शासन किया। इस राजा को लिकिर मठ के निर्माण एवं 100 से 500 लामाओं के रख-रखाव की व्यवस्था करने का श्रेय प्राप्त है, जो उस समय मानसरोवर झील एवं कैलाश पर्वत के पास निवास करते थे। देवदार के आकार का यह सुंदर लिकिर मठ इस राजा के नाम से जुड़ा हुआ है। 100 से 500 की संख्या में साधुओं को लंबे समय तक जीवन निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने का श्रेय इस राजा को है।

ल्हाछेन उत्पल (1125-1150 ईस्वी)

ल्हाछेन उत्पल एक समर्थ प्रशासक था जिसने ऊपरी और निचली लद्दाख दोनों की सेनाओं को मिलाकर पुरंग के पूर्व में स्थित लोबो प्रान्त पर विजय प्राप्त की। माना जाता है कि नए प्रांतों के जुड़ने से उसका राज्य न्यीमागोन के राज्य से भी विस्तृत हो गया था। उसने कुल्लू पर भी चढ़ाई कर उसपर कब्ज़ा कर लिया। कुल्लू के राजा ने स्वयं को इस शपथ से बाँध लिया था कि, "जब तक कैलाश पर्वत पिघल नहीं जाता और मानसरोवर सूख नहीं जाता, तब तक लद्दाख के राजा के प्रति श्रद्धा और सेवा भावना बनी रहेगी।" इस शपथ में गंभीरता निहित थी जो इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि राजा सिंगे नमग्यल के समय तक भी यह कायम थी।

ल्हाछेन नगलुक (1150-1175 ईस्वी)

इस राजा ने वनला के महल का निर्माण टाईगर यिअर[11] में कराया और ड्रेगन यिअर* में खल्तसे के ऊपर एक चट्टान पर ब्रगनग क़िले का निर्माण कराया।

---

[11] बौद्ध पांचांग के अनुसार– टाइगर यिअर– बाघ वर्ष
ड्रेगन यिअर– आज़ादा वर्ष

खलत्से में सिंध नदी के ऊपर पहला पुल बनवाने का श्रेय भी इसी राजा को है, जिसके स्थान पर अब वर्तमान पुल विद्यमान है जो व्यापार के लिए और कर आदि की राजस्व के लिए महत्त्वपूर्ण है। पुल के पास लगा राजा का आदेशपत्र पुल को नुक़सान पहुँचाने वालों को चेतावनी देता था। ब्रगनग महल, जिसके निर्माण का श्रेय इस राजा को है, में सोलह परिवारों ने अपना जीवन बिताया था।

ल्हाछेन गेभे (1175-1200 ईस्वी)

इस राजा ने अपने पिता ल्हाछेन नगलुक के बाद गद्दी संभाली। इसके अतिरिक्त इसके जीवन के विषय में कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी नहीं मिलती।

ल्हाछेन जोलदोर (1200-1225 ईस्वी)

अपने पिता की ही तरह, जिसके बाद इस राजा ने गद्दी संभाली, इसके बारे में भी कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी क्रॉनिकल (राजवंशीय अभिलेख) या अन्य कहीं नहीं मिलती।

ल्हाछेन टाशीगोन (1225-1250 ईस्वी)

स्पलगीगोन के आठ पीढियों बाद ल्हाछेन टाशीगोन राजा बना। इस राजा को

भगवान बुद्ध के प्रवचनों को स्वर्णाक्षरों में लिपिबद्ध कराने और उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को थंकाओं पर चित्रित कराने का श्रेय प्राप्त है। कला की दुर्लभ वस्तुओं को आज भी उत्कृष्ट स्थिति में स्तोक के राजमहल में सुरक्षित देखा जा सकता है। इस राजा के शासनकाल में ही मंगोल शासक चंग्हेज़ ख़ान ने तिब्बत पर कब्ज़ा कर लिया था।

ल्हाछेन ल्हरग्यल (1250-1275 ईस्वी)

इस राजा ने अपने पिता ल्हेछेन टाशीगोन के बाद गद्दी संभाली। *फ़्रैंकी* के अनुसार, उसका पूरा नाम 'ल्हाछेन कुन्गा नमग्यल' था जैसा कि तारु गाँव के पास प्राचीन शिल्पकला के एक नमूने पर अंकित है। इन शिल्पकला के नमूनों में प्रमुख शिल्प पर

वज्रपाणि को चित्रित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रपाणि राजा के प्रिय देवता थे। इस राजा को लामाओं द्वारा लिखे गए कुछ ग्रंथों के स्वर्णाक्षरों में प्रतियाँ बनवाने का श्रेय भी प्राप्त है जिन्हें पश्चिमी तिब्बत भेजा गया।

ल्हाछेन छोसफेल (1275-1300 ईस्वी)

पिता की मृत्यु के बाद ल्हाछेन छोसफेल गद्दी पर बैठा। इस राजा ने अनेक धार्मिक और सामाजिक नियम लागू कराए, जिनके लिए इसको याद किया जाता है। अपने कर्तव्यों को सूक्ष्मता और पूर्णता से निभाने के लिए भी यह प्रसिद्ध हुआ। छोसफेल के शासनकाल में समृद्धि भरा जो वातावरण लोगों को प्राप्त था उसे *फ्रैंकी* ने सही शब्दों में वर्णित किया है–

"इस राजा के राज में लोग इतने धनी हो गए कि वे सोने से बनी टोपियाँ पहनते, और उनके मुख चाय और मदिरा से कभी ख़ाली नहीं रहते। मालिक और सेवक दोनों अपने दिन आनंद और उल्लास में बिताते।"

ल्हाछेन ङोरुपगोन (1300-1325 ईस्वी)

ङोरुपगोन के शासन के दौरान, नवदीक्षित भिक्षुओं को धार्मिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए मध्यवर्ती तिब्बत भेजने की प्रथा की शुरूआत हुई। इस व्यवस्था से बोन धर्म को गहरा धक्का लगा जो उस समय लद्दाख में प्रचलित था। इससे ल्हासा को एक महान साहित्यिक केन्द्र बनने में सहयोग मिला जिसका धार्मिक मामलों में प्रभुत्व अडिग था। अनेकानेक मठों का जीर्णोद्धार कराने के अलावा, राजा ने डिगुङ् मत के लामा छोसकी जिग्स्तेन के साथ ल्हासा के मठों के लिए स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, मोती आदि के प्रचुर भेंट भेजे। धर्म के प्रचार में इस राजा का प्रमुख योगदान था, 108 खंडों वाले कांग्युर या तिब्बती त्रिपिटक की दो प्रतिलिपियाँ बनवाना। *राजतरंगिनी* के अनुसार उस समय कश्मीर अस्थिरता के दौर से गुज़र रहा था। इसका लाभ उठाकर राजकुमार रिनचेन जिसका अपने पिता से मतभेद था, ने कश्मीर पर चढ़ाई कर दी और उसके कुछ भाग पर कब्ज़ा करने में सफल हो गया।

ल्हाछेन रिनचेन (1325-1350 ईस्वी)

इस राजा के विषय में लद्दाख क्रॉनिकल में केवल यहीं दर्ज है कि यह ल्हाछेन ङोरुपगोन का पुत्र था। क्रोनिकल में इस शासक के बारे में कोई जानकारी न होने का कारण उसका धर्म परिवर्तन हो सकता है जो क्रोनिकल को लिखने वाले लामा. ओं के लिए कदाचित् अक्षम्य था। प्रचलित धारणा के अनुसार इस राजा ने इस्लाम धर्म अपना लिया था और कश्मीर पर कुछ समय के लिए सुल्तान सदरूद्दीन नाम से शासन किया था। उसकी मृत्यु के बाद शाह मिरज़ा ने 1339 ईस्वी के आसपास शमसुद्दीन नाम से गद्दी संभाली जिसके राज्यारोहण के साथ एक नए राजवंश का जन्म हुआ और कश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित हो गया। फिर भी रिनचेन को जामा मस्जिद और बुलबुल शाह को समर्पित मक़बरा बनवाने का श्रेय प्राप्त है। बुलबुल शाह की निष्ठा से प्रभावित होकर ही उसने इस्लाम को अपनाया था। इस मक़बरे को बुलबुल लंकर कहा जाता है जो आज भी विद्यमान है।

ल्हाछेन शेसरब (1350-1400 ईस्वी)

राजा रिनचेन के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र ल्हाछेन शेसरब बना। ल्हाछेन शेसरब ने साबू में हङ्त्सेमो चट्टान पर सिंगे स्गङ् नामक एक छोटा-सा गाँव बनवाया जहाँ बहुत सारे लोग आकर बस गए। इस राजा के लंबे शासनकाल के विषय में इसके अतिरिक्त और कोई उल्लेखनीय घटना दर्ज नहीं है।

ल्हाछेन ठित्सुकदे (1350-1400 ईस्वी)

यह ल्हाछेन शेसरब का पुत्र था। इस राजा ने 108 बौद्ध पगोडों की एक लंबी पंक्ति लेह में और ऐसी ही दो और पंक्तियों का निर्माण साबू में कराया। ये पगोडे मणि-वॉल या मणि दीवारों का पिछला रूप हैं जो इसके बाद प्रचलन में आए और जिसे लद्दाख में सब श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

त्सोङ्खापा

1357-1419 ईस्वी के आसपास, तिब्बत में बौद्ध धर्म के गेलुक्स पा (प्रवीण) या

पीलीटोपी शाखा के प्रतिष्ठापक त्सोङ्खापा रहते थे। उनका असली नाम लोबजङ् टकपा था। ल्हासा से अपनी शिक्षा पूरी करने और लामा के तौर पर अभिषिक्त होने के बाद, इस महान सुधारक ने अपने अनुयायियों के लिए नए धार्मिक नियम और आचरण संहिताएँ प्रस्तुत कीं। त्सोङ्खापा की भविष्यवाणी के अनुसार ही ठिगसे मठ की स्थापना पलदन शेरब नामक एक लामा ने कराई। लिखित जानकारी के अनुसार त्सोङ्खापा ने लद्दाख के राजा को यह संदेश भेजा कि अगर उसने सिंह के आकार की चट्टान पर मैत्रेय बुद्ध की एक प्रतिमा और चारों दिशाओं में चङ्छुब स्तूपों[12] का निर्माण कराया तो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी। राजा ने बिना समय गवाए तिङ्मोगङ् गाँव में मैत्रेय बुद्ध की प्रतिमा स्थापित कराई और सिंह के आकार के इस चट्टान पर चार स्तूपों का भी निर्माण करवाया। उसने इसी तरह की एक और प्रतिमा लेह के त्सेमो पहाड़ी पर भी स्थापित कराई।

ल्हाछेन टकपा बुमल्दे (1430-1470 ईस्वी)

ल्हाछेन ठीत्सुकदे का उत्तराधिकारी ल्हाछेन टकपा बुमल्दे था जिसने अपने पिता के बाद शासन की बागडोर संभाली। लेह स्थित चमीयामेर (Chamiamer) और सुमरस्क (Sumrask)[10] के निर्माण का श्रेय इस राजा को है। टकपा बुमल्दे के शासन काल में त्सोङ्खापा ने दो लोगों को बुद्ध की एक प्रतिमा के साथ लेह भेजा जिसे राजा ने सादर प्राप्त किया। इस अमूल्य उपहार से प्रसन्न होकर राजा ने इसे गजाकार चट्टान पर स्थापित स्पेथुब या स्पीतुक मठ में प्रतिष्ठापित कराया। यह प्रार्थनास्थल लोत्सवा रिनचेन जङ्पों के नाम पर स्थापित हुआ था जिसे राजा ने त्सोङ्खापा द्वारा भेजे गए दोनों लामाओं से परामर्श करके एक बड़े मठ में बदल दिया। इस प्रकार गेलुक्स पा मत का पहला मठ स्पीतुक में स्थापित किया गया जो लेह से आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। परन्तु क्रॉनिकल के तहत हालाँकि ल्हाछेन टकपा बुमल्दे का नाम इस मठ से जुड़ा हुआ है परन्तु "उसने वास्तव में इस मठ का निर्माण नहीं कराया, बल्कि यह मठ स्वयं चमत्कारिक ढंग से अस्तित्व में आया।" इसलिए इस मठ के मूल अस्तित्व से रहस्य भी जुड़ा हुआ है।

[12] स्तूप के आठ प्रकारों में से एक

दो राज्य

इसी युग के आसपास, ल्हाछेन टकपा बुमल्दे (1430-1470 ईस्वी) के शासनकाल में लद्दाख दो राज्यों में विभाजित हो गया। एक की राजधानी लेह और शे में स्थित थी और दूसरे की सिंध के निचले भाग में बसे बज़्गो और तिङ्मोगङ् में। लेह और शे जोकि मुख्य राज्य का हिस्सा थे टकपा बुमल्दे के अधीन थे और उसके छोटे भाई टकपा बुम ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था और बज़्गो और तिङ्मोगङ् उसके राज्य की राजधानी थी। परन्तु वैधता लेह स्थित वंश अर्थात् राजा टकपा बुमल्दे के वंश की ही मानी जाती है।

लोटस चोगलदन (1470-1534 ईस्वी)

ल्हाछोन टकपा बुमल्दे के बाद उसका पुत्र लोटस चोगलदन स्तोद मरयुल का राजा बना। दूसरे राज्य में टकपा बुम के पुत्र ल्हाछेन भगन (1470-1500 ईस्वी) ने गद्दी संभाली। ल्हाछेन भगन को दोनों राज्यों को फिर से एक करने का श्रेय जाता है। उसने शे के राजा को गद्दी से उतारकर आधी शताब्दी से भी कम समय में दोनों राज्यों को फिर से एक कर दिया। उसने लद्दाख के द्वितीय राजवंश, जिसे नमग्यल राजवंश के नाम से जाना जाता है, कि स्थापना की। ल्हाछेन भगन के दो पुत्र थे– ल्हाछेन ल्हावङ् नमग्यल और ल्हाछेन टाशी नमग्यल। अपने दोनों पुत्रों का नाम उसने नमग्यल रखा जिसका अर्थ है 'आदर्श विजेता'। इसके बाद इस वंश के सारे राजाओं के नाम के पीछे नमग्यल पदनाम जुड़ गया।

ल्हावङ् नमग्यल और टाशी नमग्यल (1500-1530 ईस्वी)

भगन के दोनों पुत्रों में कोई समानता नहीं थी। बड़ा भाई ल्हावङ् बलवान और हर प्रकार के कार्य में कुशल था। जबकि छोटा भाई टाशी चालाक और धूर्त था। टाशी ने अपने भाई की आँखें निकलवा दीं, उसे परिवार समेत बंदी बना लिया और गद्दी पाने के लिए अपना रास्ता साफ़ करने के उद्देश्य से उन सब को ज़ांग्स्कर के पास स्थित लिङ्शेद नामक गाँव भेज दिया। इस भ्रातृघातक कर्म के बावजूद क्रॉनिकल में इसे एक धार्मिक पुरुष के रूप में दर्शाया गया है। धर्म की ओर इसका झुकाव इस

बात से भी सिद्ध होता है कि उसने ल्हासा में स्थित अनेक मूर्तियों पर स्वर्ण-पत्तर चढ़वाया। अनेक स्तूपों का भी निर्माण करवाया और कांग्युर एवं तांग्युर समेत अनेक धार्मिक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवाईं।

परन्तु राजा टाशी नमग्यल निसंतान रहा और उसके राजवंश पर विलोपन का खतरा मंडराने लगा। इसलिए उसने अपने अंधे भाई के लिए एक पत्नी का बंदोबस्त कराया ताकि गद्दी को वारिस मिल सके। इस कार्य में उसे सफलता भी मिली।

मिर्ज़ा हैदर का अभियान

ल्हाछेन टाशी नमग्यल के शासनकाल के दौरान कशगार के सुल्तान सय्यदुल्लाह ख़ान ने ल्हासा पर अधिकार कर उसके मठों को लूटने के उपकम में लद्दाख पर कब्ज़ा करने के लिए अपने सेनापति मिर्ज़ा हैदर को 1531 ईस्वी में लद्दाख भेजा। इस अभियान में मिर्ज़ा हैदर को नूबरा घाटी से होकर गुज़रना पड़ा जहाँ आरंभ में उसे कुछ विरोधों का सामना करना पड़ा जिनको उसने पार कर लिया। परन्तु मरयुल की ओर उसके बढ़ते कदम को टाशी नमग्यल ने रोक दिया जिससे घुसपैठियों को भारी नुक़सान उठाना पड़ा।

मिर्ज़ा हैदर की पराजय का समाचार सुनकर सुल्तान भारी सेना के साथ नूबरा की ओर बढ़ा जहाँ परामर्श के लिए मिर्ज़ा भी उससे मिला। निर्णय यह हुआ कि सुल्तान बाल्तीस्तान पर चढ़ाई करेगा और मिर्ज़ा कश्मीर की ओर 4000 की फौज के साथ रवाना होगा। सुल्तान ने शिगर के दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया जबकि मिर्ज़ा ने कश्मीर में कई महत्त्वपूर्ण जीत हासिल किए और सर्दियों के अंत तक वह मरयुल लौट आया। वसंत के आगमन के साथ सुल्तान भी मरयुल वापस आ गया।

इस श्रम-साध्य और कठिन अभियान के बाद सुल्तान का स्वास्थ्य गिरता गया जिसके चलते उसे घर वापस लौटना पड़ा जहाँ 1532 ईस्वी में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कश्नबार कोकालताश ने नूबरा पर चढ़ाई की जिस में वह सफल हुआ। उसने पूरी घाटी में तबाही मचाई और वहाँ के सारे क़िलों पर कब्ज़ा कर लिया।

इसके बाद मिर्ज़ा हैदर ने अपना ध्यान तिब्बत की ओर केन्द्रित किया और ल्हासा की सीमा के पास पहुँच गया जहाँ अत्यधिक ठंड और ऊँचाई के कारण, उसकी सेना को काफ़ी लोगों की जान का नुक़सान हुआ और उसे मरयुल लौटना पड़ा। परन्तु इस धक्के से मिर्ज़ा के जोश और उच्छृंखल उद्देश्यों में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक बड़ी सेना जुटाने के बाद उसने सुरु और ज़ांग्स्कर की ओर प्रस्थान किया लेकिन यह अभियान असफल रहा। उसके कुछ साथी जो उसके इस अन्धाधुन्ध शोषण और विषम परिस्थितियों वाले इस क्षेत्र में चल रहे उसके दीर्घ अभियानों से तंग आ चुके थे, सुरु के शासक के पक्ष में जाकर मिर्ज़ा से विश्वासघात कर बैठे। राजा ने मिर्ज़ा का मुँह सी डालने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार मिर्ज़ा के महत्त्वाकांक्षी अभियानों का तब अंत हो गया, जब उसे वापस बुलवा लिया गया। इसलिए मिर्ज़ा को ल्हासा के अपने अभियान को ख़ारिज करते हुए अत्यंत कठोर हालातों में बदाकशन से होकर अपने क्षेत्र लौटना पड़ा। यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि ऐसे कई बिंदु हैं जिनको लेकर लद्दाख क्रॉनिकल और मिर्ज़ा हैदर द्वारा लिखित 'तारीख़-इ-रशीदी' में मतभेद हैं–

i) लद्दाख क्रॉनिकल मिर्ज़ा हैदर के पराजित होने और राजा ल्हाछेन टाशीगोन की सेना द्वारा बाहर खेदेड़े जाने की बात पर ज़ोर देता है। इसके विपरीत 'तारीख़-इ-रशीदी' बताता है कि टाशीगोन की हत्या सुल्तान ने की थी जब उसने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया था। लेकिन 'तारीख़-इ-रशीदी' में आगे यह भी लिखा हुआ है कि जब मिर्ज़ा ल्हासा से वापस आया, तब उसका स्वागत टाशीगोन ने किया था। एक मृत व्यक्ति दोबारा जीवित कैसे हो सकता है, यह एक स्पष्ट गतिरोध खड़ा करता है।

ii) लद्दाख क्रॉनिकल के अनुसार, लद्दाख के दोनों राज्यों को ल्हाछेन भगन ने एक किया था अर्थात् मिर्ज़ा के अभियान के समय लद्दाख में एक ही राज्य होना चाहिए था लेकिन 'तारीख़-इ-रशीदी' में दो राज्यों के होने का उल्लेख है। राज्यों के एकीकरण का श्रेय भी ल्हावङ् गोन के ज्येष्ठ पुत्र त्सेवङ्

नमग्यल को दिया गया है। क्योंकि 'तारीख़-इ-रशीदी' विरोधाभासी प्रतीत होता है, इसलिए लद्दाख क्रॉनिकल को प्रामाणिक माना जाना चाहिए।

नेत्रहीन राजा ल्हावङ् नमग्यल के तीन पुत्र हुए– त्सेवङ् नमग्यल, नमग्यल गोन्पो और जमयङ् नमग्यल। टाशी नमग्यल की मृत्यु के पश्चात् त्सेवङ् ने गद्दी संभाली और आगे चलकर सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में लद्दाख के द्वितीय राजवंश अर्थात् नमग्यल राजवंश की नींव रखी।

3

नमग्यल राजवंश

जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया ल्हाछेन टाशी नमग्यल निसंतान रहा और उसके नेत्रहीन अग्रज के ज्येष्ठ पुत्र त्सेवङ् नमग्यल ने उसके बाद गद्दी संभाली। सोलहवीं शताब्दी में त्सेवङ् नमग्यल द्वारा पदग्रहण किए जाने के साथ ही नमग्यल राजवंश की नींव लद्दाख में पड़ गई। इस राजवंश का शासन लंबे समय तक चला परन्तु सन् 1842 में जम्मू के राजा गुलाब सिंह के सेनापति ज़ोरावर सिंह के दीर्घकालिक अभियान के आगे हार गया। राजा त्सेवङ् नमग्यल से लेकर नमग्यल शासकों के राज का संक्षिप्त ब्योरा नीचे दिया जा रहा है।

त्सेवङ् नमग्यल (1532-1555 ईस्वी)

यह शासक पदग्रहण के समय उम्र में छोटा था, फिर भी एक विदग्ध पुरुष और महान योद्धा था। हानुला के ऊपर से होते हुए बाल्तीस्तान तक और हुनुपता से होते हुए ज़ांग्स्कर तक मार्ग निर्माण जैसे अनेक समाजसेवी कार्यों के अतिरिक्त, उसने अपने अंधे पिता के सम्मान में बुद्ध एवं अन्य देवताओं की अनेक प्रतिमाओं का भी निर्माण करवाया। साथ ही, अनेक मणि-दीवार भी बनवाए। जागीरदारों के विद्रोह को कुचलने के लिए राजा को उनसे युद्ध करना पड़ा जिसमें उसे पर्याप्त सफलता मिली। लद्दाख के साम्राज्य को इस राजा के शासन में पर्याप्त विस्तार मिला।

जमयङ् नमग्यल (1555-1610 ईस्वी)

प्राप्त स्रोतों के अनुसार राजा त्सेवङ् नमग्यल का कोई वारिस नहीं था इसलिए उसके बाद उसके अनुज जमयङ् नमग्यल ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। जमयङ् नमग्यल का शासनकाल लद्दाख के लिए कठिनाइयों भरा रहा। जिन जागीरदारों को त्सेवङ् ने लेह में बंदी बनाकर रखा हुआ था, वे स्कर्दू के राजा अली शेर ख़ान का प्रोत्साहन पाकर खुद को आज़ाद कराने में सफल हो गए। अली शेर

ख़ान ने करतकशा और परकुटा नामक क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर लिया जो भौगोलिक रूप से बाल्तीस्तान में होते हुए भी लद्दाख के अधिकार में था। जब उसने बोद खरबू पर भी कब्ज़ा कर लिया तो जमयङ् नमग्यल के लिए यह असह्य हो गया। क्रोधित होकर उसने प्रण लिया कि अपनी भूमि पर घुसपैठ करने वाले को वह हटाकर रहेगा। लोसर अर्थात् नव वर्ष के आने में दो महीने का समय था, जिस कारण राजा के सलाहकारों ने उसे अपने अभियान को स्थगित करने की सलाह दी। इस सलाह को मानने के बजाय, राजा ने लोसर का उत्सव तभी अर्थात् समय से दो महीने पूर्व ही मनाने का आदेश दिया, जिसका अर्थ यह था कि इसे नए वर्ष के पहले दिन न मनाकर ग्यारहवें महीने के पहले दिन मनाया जाए। यह प्रथा आज तक चली आ रही है।

लोसर के उत्सव के बाद राजा अपने पूर्व निर्धारित अभियान पर निकल पड़ा। उसकी सेना ने बोद खरबू को वापस अपने अधिकार में कर लिया परन्तु अली शेर ख़ान और खपलू और शिगर के राजाओं की सम्मिलित सेना ने उसे परास्त कर दिया। ख़राब मौसम विशेषकर भारी हिमपात ने राजा और उसकी सेना के लिए दर्रों, घाटियों आदि को पार करना कठिन कर दिया। जमयङ् नमग्यल युद्ध हार गया और उसे बंदी बना लिया गया।

अपनी मुक्ति के लिए राजा ने शांति प्रस्ताव को स्वीकार किया जो आक्रमणकारियों के हित में था। लद्दाख और स्कर्दू के बीच गगरा नाला को सीमा निर्धारित किया गया। यह नाला और गानोख दोनों स्कर्दू को दे दिए गए। राजा ने अपनी पुत्री मेनदोक ग्यलमो का विवाह अली शेर ख़ान से करा दिया जिसके बदले खपलू के राजा ने अपनी पुत्री ग्यल ख़ातून का विवाह जमयङ् नमग्यल से इस शर्त पर कराया कि उसे पहली रानी का दर्जा दिया जाए और उससे उत्पन्न पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाए।

जमयङ् नमग्यल बाल्तियों द्वारा बौद्ध मठों के अपवित्र किए जाने से अत्यंत दुखी था। इसलिए इसके प्रायश्चित्त के लिए उसने अपनी पहली पत्नी से जन्में दोनों पुत्रों को ल्हासा के प्रतिष्ठित मठों के लिए मूल्यवान उपहारों समेत तिब्बत भेज

दिया। यद्यपि उसकी इच्छा क्षतिग्रस्त मठों का जीर्णोद्धार करने की और नष्ट हो चुके धार्मिक ग्रंथो की क्षतिपूर्ति करने की थी परन्तु इस कार्य को पूरा करने के लिए वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहा।

सिंगे नमग्यल(1610-1645 ईस्वी)

सिंगे नमग्यल 'सिंह सा राजा' मुस्लिम माता से जन्मे होने पर भी एक धर्मपरायण बौद्ध था। उसका विवाह रुपशो के शासक की पुत्री स्कलजङ् से हुआ था। सिंगे एक ह्रष्ट-पुष्ट, वीर और उत्साही योद्धा था और धनुर्विद्या एवं घुड़सवारी में दक्ष था।

लद्दाख में बौद्ध धर्म को बढ़ावा देने में इस राजा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रशंसनीय कार्य में स्तकसङ् रसपा (बाघ जैसा लामा) ने उसका साथ दिया जिन्होंने आगे चलकर हेमिस मठ में कुशोक अर्थात् महागुरु की उपाधि प्राप्त की। वे संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। उनकी पुस्तक 'जर्नी टू समबाटा' (journey to sambata)[11] को लद्दाख और अन्य बौद्ध केन्द्रों में ऊँचा दर्जा दिया जाता है। हेमिस मठ के अतिरिक्त इस जोड़ी ने अर्थात् सिंगे नमग्यल (सिंह राजा) और स्तकसङ् रसपा (व्याघ्र लामा) ने मिलकर ल्चेमरे, वनला, अन्ले और टाशीगोन आदि मठों की स्थापना की। राजा ने अनेक मणि-दीवारों का भी निर्माण कराया जो आज भी विद्यमान है। मणि-दीवारों पर अपने शोध के आधार पर *फ़्रैंकी* का मानना है कि स्तकसङ् रसपा या तो मणि-दीवारों के अविष्कारक थे या लद्दाख में इसके परिचायक। संभवतः *फ़्रैंकी* इस काल से पहले निर्मित किसी मणि-दीवार से रू-ब-रू नहीं हुए। इस राजा के शासनकाल में निर्मित मणि-दीवारों में लिङ्शेद में स्थित मणि-दीवार आता है, जिसपर सिंगे नमग्यल के शिलालेख मौजूद है। दूसरा बज़्गो और स्नेमो के बीच का आधा किलोमीटर लंबा मणि-दीवार है। भवनों में, तीन साल की अवधि में निर्मित लेह का नौमंज़िला 'सिंह महल' है। इसमें कई प्रार्थनालय, मांगलिक कक्ष और अन्य बौद्ध प्रतीक हैं। यह महल सन् 1842 में लद्दाख को डोगरों के द्वारा अपने राज्य में मिलाने से पहले राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रियाओं का केन्द्र था। इस राजा के

द्वारा स्थापित एक और प्रभावशाली इमारत है बज़्गो का मठ जहाँ उसने बुद्ध की दोमंजिली स्वर्णजटित ताम्र प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई है।

अपने पिता की स्मृति में, सिंगे नमग्यल ने मैत्रेय बुद्ध अपने आठवें वर्ष में जितने बड़े होंगे, उस हिसाब से उतनी बड़ी प्रतिमा बनवाई, पवित्र कांग्युर ग्रंथ को स्वर्ण और रजत अक्षरों में लिखवाने के अलावा 'चम छुस वीना' (cham chhus vina)[12] के पाँच खंडों समेत अन्य धार्मिक ग्रंथों की भी प्रतिलिपियाँ बनवाईं। अपनी माता की आत्मा के उद्धार के लिए राजा ने ल्हासा के प्रतिष्ठित मठों और पनचेन लामा को रेशम, स्वर्ण, रजत, मूँगा, मोती, तृणमणि आदि प्रचुर सामग्री भेंट में दी।

शासन के अंतिम वर्षों में राजा अपने राज्य के विस्तार कार्य में लग गया। उसने वाखा पर बिना किसी प्रतिरोध के विजय प्राप्त की। फिर भी मुलबेक के राजा गोरीथन और फोकर के राजा दलबा सिंगे ने आत्मसमर्पण करने से पहले कड़ा विरोध दर्शाया। करत्से के राजा कुंगा नमग्यल की ओर से कुछ विरोध का सामना करने के बाद राजा ने अपने पिता द्वारा बल्तियों को हारे हुए क्षेत्रों को वापस अधिकार में करने के लिए पुरीग की ओर प्रस्थान किया। इसके बाद हुए संघर्षों के परिणामों को लेकर अलग-अलग मत मिलते हैं। एक तरफ़ जहाँ क्रॉनिकल बोद खरबू में मुग़ल और बाल्ती के सम्मिलित सेनाओं पर लद्दाखी सेना की पूर्ण विजय दर्शाता है, वहीं दूसरी तरफ़ मुग़ल स्रोतों के अनुसार लद्दाखियों की पराजय हुई थी। राजा को शांति प्रस्ताव मानना पड़ा था जिसके तहत दिल्ली स्थित मुग़ल सिंह. ासन के प्रति ख़िराज अदा करने का वचन देना पड़ा, हालाँकि इस वचन का पालन नहीं किया गया।

परन्तु इन बाधाओं से राजा के विस्तारवादी सोच में कोई कमी नहीं आई। अपनी सेना के साथ वह पूर्व की ओर बढ़ा जहाँ फिर से उसे विरोध का सामना करना पड़ा और ल्हासा की सरकार के साथ एक शांति संधि पत्र के लिए तैयार होना पड़ा। इसके तहत नार नदी को लद्दाख एवं तिब्बत की सीमा घोषित किया गया। यहाँ से वापस लौटते समय राजा की मृत्यु हो गई। सिंगे नमग्यल के

शासनकाल को लद्दाख के इतिहास का सबसे गौरवशाली शासनकाल माना जाता है।

देलदन नमग्यल (1645-1666 ईस्वी)

सिंगे नमग्यल के तीन पुत्र थे, देलदन नमग्यल, इन्द्रबोधी नमग्यल और देस्क्योङ् नमग्यल। ज्येष्ठ पुत्र होने के अधिकार से सन् 1645 में पिता की मृत्यु हो जाने पर देलदन नमग्यल ने गद्दी संभाली। इन्द्रबोधी, जिसने पहले स्तकसङ् रसपा के शिष्य के रूप में मठ का जीवन अपनाया था, आगे चलकर गुगे का शासक बन गया और देस्क्योङ् ने ज़ांग्स्कर और स्पीती पर शासन किया। दोनों छोटे भाइयों ने लद्दाख के राज्य की श्रेष्ठता को स्वीकृति दी और देलदन ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया।

देलदन नमग्यल धर्मोत्साह से पूर्ण शासक था। उसने शे और रुदोक में लेह के सिंह राजमहल के आदर्श पर दो महलों का निर्माण करवाया। शे के पाँचमंज़िले महल का निर्माण इसी राजा ने अपने पिता को श्रद्धांजलि स्वरूप करवाया। इस महल में मिट्टी, ताम्र और सोने से निर्मित बुद्ध की तीनमंज़िली प्रतिमा भी प्रतिष्ठापित कराई। इस प्रार्थनालय को बोधिसत्त्वों और स्तकसङ् रसपा के उत्कृष्ट भित्ति-चित्रों से सुसज्जित करवाया। राजा ने लेह के राजभवन में भी बुद्ध की दोमंज़िली ऊँची प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराई। अपनी मृत माता के उद्धार के लिए उसने लेह के दक्षिण पूर्व में लद्दाख की सबसे लंबी मानी जाने वाली मणि-दीवार बनवाई जिसके दोनों सिरों पर स्तूप खड़े हैं। अपने पिता के पद्-चिह्नों पर चलते हुए राजा देलदन नमग्यल ने ज़ांग्स्कर, नूबरा, बज़्गो और तिङ्मोगङ् से 100 लामाओं की नियुक्ति कर पवित्र मंत्र 'ओम् मणि पद्मे हुँ' के 100 करोड़ उच्चारण कराए।

राजा युद्ध नीति में प्रवीण और प्रशासनिक कार्य में पारंगत था। वह जमयङ् नमग्यल के शासनकाल में लद्दाख में हुए बाल्ती लूट का बदला लेकर लद्दाखी सेना के क्षीण हुए गौरव को पुनः स्थापित करना चाहता था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राजा ने ऊपरी खपलू पर चढ़ाई कर दी जहाँ स्कर्दू के राजा के भतीजे बाबर और याकुब शासन कर रहे थे। दानों भाइयों को उनकी माता के साथ बंदी बना

लिया गया और पायान तक का पूरा छोरबत इलाक़ा लद्दाख में मिलाया गया। परन्तु आगे चलकर भारत के मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के साथ तनावपूर्ण संबंधों के कारण राजा को भारी मुसीबत का सामना करना पड़ा। सन् 1663 में जब औरंगज़ेब कश्मीर पहुँचा तब उसे सिंगे नमग्यल के मुग़लों के प्रति वित्त-संबंधी अधूरे वचन का पता चला और अख़िरकार देलदन नमग्यल को अपने पिता के द्वारा दिए गए वचन को पूरा करने के लिए तत्पर होना पड़ा। इसी व्यवस्था के तहत लेह का जामा मस्जिद राजा देल्दन के द्वारा बनवाया गया था।

देलेक नमग्यल (1666-1695 ईस्वी)

देलेक नमग्यल के गद्दी पर बैठने से पहले, ल्हासा में बौद्ध धर्म के पुराने मत का अनुगमन करने वाले लामाओं और परिष्कृत गेलुक्स पा संप्रदाय को अंगीकार करने वाले लामाओं के बीच एक गंभीर अंतर्विरोध फूट पड़ा। इसी समय के आसपास, ल्हासा और भूटान के बीच भी कुछ विवाद उत्पन्न हुआ। इन सब गतिविधियों की पृष्ठभूमि में तिब्बती सेना ने मंगोलिया के एक भिक्षु गलदन त्सेवङ् जो बाद में सेना का वज़ीर बना के नेतृत्व में लद्दाख और ज़ांग्स्कर पर इस मंतव्य से आक्रमण किया कि कुछ प्रदेशों को लद्दाख के अधिकार से मुक्त कराया जा सके। साथ ही, राजा को अपने महल के प्रमुख लामा के रूप में एक गेलुक्स पा मत के लामा को चुनने के लिए ज़ोर दिया जा सके परन्तु यह प्रस्ताव राजा नहीं मान सकता था क्योंकि उस पद पर पहले से ही भूटान के एक प्रमुख लामा विराजमान थे।

ग्यलसन टुन्डुप लोनपो के नेतृत्व में लद्दाखी सेना आक्रमणकारी सेना से गर और टाशीगोङ् के बीच में स्थित जामर वेङ् में टकराई। पराजित होते राजा देलेक ने तिङ्मोगङ् के क़िले में शरण ली जिसे तिब्बती सेना ने घेर लिया। परन्तु कश्मीर के राज्यपाल के माध्यम से औरंगज़ेब की सहायता लेने में वह सफल हुआ। फिदाई ख़ान के नेतृत्व में मुग़ल सेना ने तिब्बती हमलावरों को परास्त कर दिया और उन्हें टाशीगोङ् मठ में शरण लेने और शांति प्रस्ताव को मानने पर विवश कर दिया। कश्मीरी इतिहासकार मानते हैं कि इस अवसर पर राजा ने अकबत मेहमूद ख़ान नाम के साथ इस्लाम को अपना लिया परन्तु क्रॉनिकल में इसका कोई उल्लेख

नहीं मिलता और लद्दाख के लोग भी इस बात का पुरज़ोर खंडन करते हैं। इस घटना से हालाँकि लद्दाख पर दिल्ली का आधिपत्य स्थापित हो गया और राजा को हर तीन वर्ष के भीतर 18 चितकबरे घोड़े, 18 कस्तूरी कोष और 18 सफ़ेद याक की पूँछ मुग़लों को कर-स्वरूप देने के लिए राज़ी होना पड़ा।

ल्हासा की सरकार ने अपने और लद्दाख के राजा के बीच के विवाद में मुग़लों के हस्तक्षेप करने और राजा द्वारा इस्लाम को अपनाने की बात की निंदा की, हालाँकि स्वयं राजा अपने धर्म परिवर्तन को लेकर गंभीर नहीं था। भविष्य में इस प्रकार की घटनाओं के दोहराए जाने से बचने के लिए दलाई लामा ने लामा मिफम वङ्पो को तिङ्मोगङ् भेजा, जहाँ मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाए रखने के लिए दोनों पक्षों ने सन् 1684 में एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर किए। इस संधिपत्र के अनुसार दोनों देशों के बीच सीमाएँ निधार्रित हुई जिनके तहत पंगोङ् झील को बाँटा गया। यह सीमा आज भी वैसे ही क़ायम है। ल्हासा की सरकार ने दोबारा कभी लद्दाख पर आक्रमण न करने का भरोसा दिलाया जिसके बदले लद्दाख ने कश्मीर से जुड़ी तिब्बती सीमा की रक्षा करने का वचन दिया। ल्हासा सरकार द्वारा यह भी भरोसा दिलाया गया कि ङरिस कोरसुम[13] में उत्पादित पश्मीना ऊन को केवल लद्दाख में ही बेचा जाएगा। साथ ही, यह भी तय हुआ कि कश्मीर के व्यापारी स्पीतुक गाँव से पश्मीना ख़रीदकर वहीं से वापस लौटेंगे। लद्दाख के व्यापारी पश्मीना ख़रीदने चङ्थङ् जा सकते हैं परन्तु उसे बेचने कश्मीर नहीं जा सकते। दूसरे शब्दों में, लद्दाखी व्यापारी इस नियम से बँधे हुए थे कि वे कश्मीरियों को लद्दाख की सीमा के भीतर ही पश्मीना बेच सकते हैं। संधि की एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था यह थी कि लद्दाख का राजवंश जोकि ड्रुकपा मत को संरक्षण प्रदान करता आया था, वह गेलुक्स पा मत को भी प्रोत्साहन देगा। ल्हासा और लद्दाख के बीच व्यापारिक दलों के आदान-प्रदान को भी स्वीकृति दी गई। इस समझौते के तहत ल्हासा से जोङ् सोङ् नामक व्यापारी दल चीनी चाय से लदे 200 टट्टुओं के साथ प्रति वर्ष लद्दाख आता था। यह चाय केवल भारतीय व्यापारियों को बेची जाती थी। यह दल राजा को चीनी चाय, चीनी रेशम और खादग्स आदि भेंट करता था। राजा भी इसी

[13] पश्चिमी तिब्बत

तरह का एक दल प्रति वर्ष ल्हासा भेजता । लोपछक कहलाने वाले इस दल के साथ दलाई लामा के लिए स्वर्ण, यारकन्दी रेशम, ज़ाफ़रान, भारतीय वस्त्र आदि भेंट भेजे जाते थे।

जब तक लद्दाख स्वतंत्र रहा, इस संधि ने लद्दाख और तिब्बत के संबंधों को मज़बूत बनाए रखा।

न्यीमा नमग्यल (1695-1750 ईस्वी)

न्यीमा नमग्यल, जो अपने पिता के बाद राजा बना ज्ञानी और दूरदर्शी शासक था। उसकी इस विशेषता और काम करने के लोकतांत्रिक ढंग की विशेष चर्चा क्रॉनिकल में मिलती है। झगड़ों, विवादों आदि में उसका निर्णय निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण होता था जो परिपक्व पर्यालोचन और परामर्श पर आधारित होता था।

यह राजा भी एक धर्मपरायण बौद्ध था। इसके शासन काल में भूटान से पवित्र कांग्युर ग्रंथ के 108 खंडों को प्राप्त किया गया जो स्तोक के राजमहल में विद्यमान है। काष्ठ-मुद्रण की कला लद्दाख में इसी राजा के शासन के दौरान आई। उसने ल्हासा के लिए बहुमूल्य उपहार भेजे जिनमें समयस मठ समेत अन्य मठों में प्रतिष्ठापित मूर्तियों को मढ़ने के लिए स्वर्ण भी भेजा गया। तिब्बत के साथ हुए युद्ध के चलते स्तूपों और मणि-दीवारों के निर्माण की परंपरा में बाधा आई थी, जिन कार्यों को राजा ने दोबारा शुरू कराया। स्वर्ण, रजत और ताम्र के प्रार्थना-चक्रों की परंपरा भी इसी शासक के शासनकाल में प्रचलन में आई। राजा द्वारा स्थापित सबसे प्रसिद्ध इमारतों एवं ढाँचों मे चोगलमसर का मणि-दीवार और नूबरा का चरसा राजभवन हैं। इस राजा के जीवन काल में लद्दाख ने धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत प्रगति देखी। राजा द्वारा लेखकों एवं कवियों को संरक्षण दिए जाने से साहित्य और लोक गीतों को बढ़ावा मिला।

न्यीमा नमग्यल के शासनकाल में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। पहला, सन् 1715 में *जेसुइट देसिडेरी* लद्दाख से होकर ल्हासा गए और दूसरा, करत्से के शासक मोहम्मद सुल्तान ने राजा को अपने पुत्र के रूप में अपना लिया क्योंकि

उसकी अपनी कोई संतान नहीं थी। न्यीमा नमग्यल की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी शे गाँव की थी जिसका देस्क्योङ नमग्यल के जन्म के बाद देहान्त हो गया और दूसरी पुरीग की ज़ीज़ी ख़ातून थी, जिसने टाशी नमग्यल को जन्म दिया। जब वृद्ध न्यीमा नमग्यल ने बड़े पुत्र देस्क्योङ के पक्ष में सिंहासन त्यागा तब रानी अपने पुत्र को पुरीग का शासक बनाने की बात को लेकर राजा पर ज़ोर डालने लगी। इसपर राजा ने अपना पद वापस ग्रहण कर लंबे समय तक शासन किया। टाशी नमग्यल ने सार्वजनिक मत के विपरीत भिक्षु जीवन को अपना लिया।

देस्क्योङ् नमग्यल (1750-1770 ईस्वी)

यह एक अयोग्य शासक था जिसके सारे अधिकारों की डोर उसके माता के हाथों में थी। देस्क्योङ् का विवाह लोमनथङ् क्षेत्र की न्यिल्ज़ा वङ्मो से हुआ जिसने राजा के ज्येष्ठ पुत्र सस्क्योङ् नमग्यल को जन्म दिया। परन्तु स्वभाव की आपसी असंगति के कारण दोनों अलग हुए। लोमनथङ् वापस न जाकर रानी ने तिब्बत की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने पनचेन लामा को जन्म दिया। युवराज सस्क्योङ् नमग्यल ने हेमिस मठ में प्रवेश किया और ग्यलस्रस रिनपोछे के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा ने पुनः विवाह किया जिससे पुनत्सोक नमग्यल का जन्म हुआ। यहीं गद्दी का अगला उत्तराधिकारी बना।

देस्क्योङ् नमग्यल के शासन के दौरान, भूटान के एक ड्रुकपा मतवादी अवतारी लामा लद्दाख आए, जो राजा के प्रमुख गुरु बन गए। इनका आसन स्तकना मठ में था। इन्होंने ज़ांग्स्कर जाकर सानी मठ की स्थापना की थी।

इस राजा के शासनकाल में राजमाता ज़ीज़ी ख़ातून द्वारा कायरतापूर्ण कूटनीति चलाई गई। उसकी पुत्री टाशी वङ्मो का विवाह किश्तवाड़ के शासक से हुआ था। ज़ीज़ी ख़ातून इस शासक को अपने पुत्र के लिए एक ख़तरा मानती थी इसलिए उसने एक षडयंत्र रचा कि जब यह शासक अपनी पत्नी के साथ लद्दाख आते समय नदी पार करेगा तब उसे पुल से नीचे धकेल दिया जाए। प्रजा ने इस घटना की कड़ी निंदा की। टाशी वङ्मो का खपलू के राजघराने में दोबारा विवाह हुआ।

पुनत्सोक नमग्यल (1770-1775 ईस्वी)

हालाँकि देस्क्योङ् नमग्यल का ज्येष्ठ पुत्र सस्क्योङ् गद्दी का वैध अधिकारी था, परन्तु उसके दूसरे पुत्र पुनत्सोक नमग्यल ने अपनी माता की चालाकी के द्वारा गद्दी पर अधिकार कर लिया। बड़े पुत्र सस्क्योङ् नमग्यल को उसकी इच्छा के विरुद्ध हेमिस मठ भेजा गया। टाशी नमग्यल पुरीग अर्थात् वर्तमान कारगिल पर शासन करता रहा, जबकि पुनत्सोक नमग्यल का शासन लद्दाख तक ही सीमित रहा।

इस काल के आसपास कुछ ऐसी गतिविधियाँ हुईं जिनसे लद्दाख और कश्मीर के संबंधों पर संभावित ख़तरा मंडराने लगा। टाशी नमग्यल ने कश्मीरी व्यापारियों के लद्दाख के भीतर व्यापार करने पर रोक लगा दी थी। सातवें दलाई लामा के नेतृत्व में तिब्बती सरकार ने एक अवतारी लामा कथुक रिगज़िन छेनपो त्सेवङ् नोरबू को राज्यों के इस आपसी टकराव का समाधान करने और क्षेत्र में स्थायी शांति स्थापित करने के उद्देश्य से लद्दाख भेजा। इनके नेतृत्व में अन्ले में एक धार्मिक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें भविष्य में राज्यों के आपसी टकराव और संभवित झगड़ों से सुरक्षा संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए। यह निश्चय हुआ कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही गद्दी का उत्तराधिकारी होगा जबकि छोटे भाई स्पीतुक एवं ठिगसे मठों में मठ-वासीय जीवन व्यतीत करेंगे। ज़ांग्स्कर और हेनिसकेत के राज्यों को छोड़कर किसी भी राज्य में दो राजा नहीं होंगे। टाशी नमग्यल से पुरीग का शासन नहीं छीना गया और उसकी मृत्यु होने पर पुरीग के राज्य को फिर से लद्दाख में मिलाया गया। उसकी कोई संतान नहीं थी।

सस्क्योङ् नमग्यल (1775-1760 ईस्वी)[13]

लामा कथुक रिगज़िन छेनपो त्सेवङ् नोरबू, जिनका पहले उल्लेख हो चुका है, के निर्णय अनुसार पुनत्सोक नमग्यल राजा बना नहीं रह पाया और उसे अपने बड़े भाई सस्क्योङ् नमग्यल के पक्ष में गद्दी छोड़नी पड़ी। राजा और उसकी माता ने अपनी संपत्ति को आपस में बराबर बाँटा और फिर सकटी के राजमहल में जाकर रहने लगे।

सस्क्योङ नमग्यल की दो पत्नियाँ थी। उसका ज्येष्ठ पुत्र त्सेवङ् नमग्यल पहली पत्नी से जन्मा था इसलिए वहीं गद्दी का उत्तराधिकारी बना। सस्क्योङ् के लघु शासनकाल में कोई महत्त्वपूर्ण धार्मिक या प्रशासनिक कार्य नहीं देखा गया।

त्सेवङ् नमग्यल II (1730-1810 ईस्वी)

तिब्बत के महान लामा के द्वारा बनाई गई व्यवस्था से अभिजात वर्ग, गुरुजनों की सभा और व्यापारी संतुष्ट थे। परन्तु नया राजा लोगों की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर सका। पिता की अकाल मृत्यु से उसके चरित्र पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। क्रॉनिकल के अनुसार महान तिब्बती लामा के प्रस्थान के थोड़े समय बाद ही 'राजा के मन में अनिष्ट ने घर कर लिया।' जबकि उसका विवाह ज़ङ्ला की राजकुमारी से होने वाला था, जो इसी उद्देश्य से लद्दाख आ रही थी, राजा को एक निम्न जाति की बेदा महिला से प्रेम हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। लद्दाख के लोग न तो अपनी निम्न जाति की रानी से ख़ुश थे, न राजा के 500 घोड़ों से, जिनकी देखभाल शाही अस्तबल में उतने ही साइसों द्वारा होती थी[14] और न ही अपने ऊपर लगाए जा रहे अत्यधिक कर से। अपनी सारी मुसीबतों के लिए प्रजा निम्न जाति की रानी और उनके भाग्य के नेता बने बैठे निम्न जाति के पुरुषों को उत्तरदायी मानती थी। दबावों में आकर राजा को अपनी पत्नी का त्याग करना पड़ा। इसके बाद उसका विवाह सोद की राजकुमारी कुनज़ङ् वङ्मो से हुआ। राजा को गद्दी के उत्तराधिकारी के लिए पद-त्याग करना पड़ा। कालोन वङ्ग्यल को राज्य में उत्पन्न हुई समस्याओं में भागीदार होने के अपराध में निर्वासन देकर ल्हासा भेजा गया।

त्सेतन नमग्यल (1810-1820 ईस्वी)

अपने पिता के बाद गद्दी संभालने वाला यह राजा नमग्यल राजवंश का अंतिम से पूर्व वाला राजा था। उसके छोटे भाई त्सेपल नमग्यल को गुरुजनों की सभा के निर्णय अनुसार हेमिस मठ में प्रवेश कराया गया। क्रॉनिकल में इस राजा के प्रभावशाली व्यक्तित्व, कर्मिष्ठता, पाण्डित्य और विशेषकर तिब्बती व्याकरण, गणित,

फ़ारसी, कश्मीरी और अन्य भाषाओं में इसकी प्रवीणता की प्रशंसा की गई है। प्रशासन कार्य में यह निपुण था और प्रजा-कल्याण हेतु उसकी चिंता असीम थी।

अपने पिता की आत्मा के उद्धार के लिए राजा ने 'मणि सोमा' का निर्माण कराया जो 700 गज़ लंबा है और जिसके दोनों सिरों पर भव्य स्तूप खड़े हैं। यह मणि देलदन नमग्यल द्वारा स्थापित 'मणि रिङ्मो' से कुछ ही दूरी पर स्थित है। त्सेतन पोलो का कुशल खिलाड़ी था। माना जाता है कि उसने पोलो खेलते हुए अपनी एक आँख गँवा दी थी।

त्सेपेल टुनडुप नमग्यल (1820-1834 ईस्वी)

त्सेपेल टुनडुप को अपने भाई के बाद गद्दी संभालने के लिए हेमिस से वापस बुलाया गया। इसके बड़े भाई की कोई संतान नहीं थी। गद्दी के अलावा, त्सेपेल को अपने भाई की पत्नी पर भी अधिकार मिला। चरित्र में, यह राजा अपने भाई के एकदम विपरीत था। वह अत्यधिक आलसी था और कई बार युद्ध की स्थिति सामने खड़ी होने पर भी वह युद्ध को टालता रहता था। राजकीय धन की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए वह रात को न खुद सोता और न अपने अनुचरों को सोने देता था। उसे अपने मंत्रियों पर भरोसा नहीं था। यहाँ तक कि उसने अपने कुशल एवं प्रसिद्ध प्रधान मंत्री कालोन त्सेवङ् टुनडुप की परिरक्षा से शासकीय मुहर भी हटवा लिया। हालाँकि धार्मिक कार्यों के प्रति उसने अपना काफ़ी ध्यान लगाया जिसमें कुछ रजत-स्तूपों का निर्माण, गुरु पद्मा की रजत-प्रतिमा और श्वेत तारा के एक रजत-स्तूप का निर्माण कराना आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त लेह में कुछ इमारतों का और स्तोक के राजमहल का निर्माण उसके द्वारा करवाया गया।

त्सेपेल नमग्यल के शासनकाल में 'ट्रेवल्स इन द हिमालयाज़ ऑफ हिन्दोस्तान, पंजाब एट्सेट्रा' के लेखक कर्नल *विलियम मूरक्रोफ़्ट* एवं *जॉर्ज ट्रेबेक* और आधुनिक तिब्बतवाद के संस्थापक एवं प्रसिद्ध हंगेरियन *सोमो दे कोरोस (Csomo de Koros)*[15] 1820 से 1822 के बीच लद्दाख आए। हालाँकि सोमो अपनी मातृभाषा मेगियर का स्त्रोत ढूँढ़ पाने में असफल रहे। *मूरक्रोफ़्ट* ने त्सेपल को महाराजा

रणजीत सिंह के विस्तारवादी साम्राज्य के बजाय ब्रिटिश सरकार का पक्ष लेने के लिए मनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसा करके उसने "भद्र और अक्षतिकर लद्दाखियों" को "सिख आहरण और धृष्टता" के बोझ तले दबने से बचाया और अपने देश का एक ऐसे क्षेत्र पर प्रभाव निश्चित किया जो उसके लिए वाणिज्य विस्तार के अवसर प्रस्तुत करेगा।[14]

मूरक्रोफ़्ट और ट्रेबेक के लद्दाख से लौटने के बाद यह क्षेत्र बड़े उत्पाती दौर से गुज़रा। सुल्तानपुर के लोगों ने स्पीती पर आक्रमण कर वहाँ लूट पाट मचाई। आगे चलकर कुल्लू, करजा और खूनू के राजाओं ने मिलकर ज़ांग्स्कर पर चढ़ाई कर दी और वहाँ के सारे दुर्गों को नष्ट कर दिया, मठों को अपवित्र किया और अन्धाधुन्ध लूटपाट की। ज़ांग्स्कर की व्यथा का इतने से अंत नहीं हुआ। इस क्षेत्र पर इसके बाद पदर के राजा रतन शेर ख़ान ने आक्रमण किया, जिसने अतोंक से लेकर पदुम तक बड़ी तबाही मचाई लेकिन शांतिपूर्ण निर्णय होने के कारण इसके बढ़ते क़दम थम गए।

राजा के कुप्रशासन और क्षेत्रीय एकता की रक्षा करने की असमर्थता जम्मू के राजा गुलाब सिंह और उसके बहादुर सेनापति ज़ोरावर सिंह की नज़र में आई और राजा गुलाब सिंह ने लद्दाख पर कब्ज़ा करने का निर्णय किया। उसकी नज़र यहाँ के पश्मीना व्यापार और पश्चिमी तिब्बत पर टिकी थी। डॉ. *जी. एल. दत्ता* के अनुसार डोगरों द्वारा लद्दाख पर चढ़ाई करने का कारण कश्मीर को घेरना था जो गुलाब सिंह के विस्तारवादी उत्तरपूर्वी कार्यसूची का अंग था।[15] इस प्रस्तावित अभियान पर निकलने से पहले उसने अपना इरादा ब्रिटिश सरकार के सामने रखा जिसने उसे अपनी सहमति की हरी झंडी दिखा दी।

ज़ोरावर सिंह का पहला आक्रमण

सन् 1834 की गर्मियों में वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने किश्तवाड़, जम्मू और आसपास के अन्य क्षेत्रों से 5000 सैनिकों को एकत्रित कर लद्दाख पर आक्रमण किया। इस्लाम

[14] Moorcroft & Trebeck, Travels, Vol.I, pp, 420-427
[15] G.L. Datta, General Zorawar Singh, p-29

धर्म को मानने वाले कुछ सैनिक भी सेना में मौजूद थे। ज़ोरावर का प्रत्येक सैनिक प्रशिक्षित था और वह तलवारों, बरछियों से लैस था। तोपें और पहाड़ी बंदूक़ें भी डोगरों के शस्त्रों में शामिल थीं। दूसरी तरफ़ लद्दाखी सेना के पास कमज़ोर शस्त्र वाली, पुरानी सेना थी जो अप्रशिक्षित नेताओं के बल पर खड़ी थी। इसकी तुलना में डोगरों के पास शस्त्र, प्रशिक्षण और अनुशासन के स्तर पर एक बेहतर सेना थी। बोत्कल दर्रा (14,700 फ़ीट) पार कर सुरु के परिप्रदेश में पहुँचने पर, 16 अगस्त, 1834 को स्तोक के कालोन दोर्जे नमग्यल के नेतृत्व में हड़बड़ी में व्यवस्थित की गई 5000 की लद्दाखी सेना की डोगरा सेना से भिंडत हुई। इस युद्ध में लद्दाखियों को करारी हार का सामना करना पड़ा और ज़ोरावर सिंह बिना किसी सार्थक प्रतिरोध के रस्सी दर्रा पार कर सुरु पहुँच गया।

वज़ीर ने सुरु की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने एक दुर्ग का निर्माण करवाया। शरत् ऋतु थी और फ़सल काटने का समय था। सेना ने फ़सलों से कोई छेड़खानी नहीं की, जिसका फल यह हुआ कि लोग डोगरों के प्रति आत्मसमर्पण का भाव रखने लगे और भूमि-कर के तौर पर वज़ीर द्वारा निर्धारित प्रति परिवार चार रुपये भी आसानी से देने लगे। इसके बाद डोगरा सेना करत्से की ओर बढ़ी और वहाँ के दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया। युद्ध में जीते गए तमाम चीज़ों का आकलन किया गया और कुछ प्रशासनिक कार्यवाहियाँ भी हुईं जिनके तहत कारगिल और द्रास के लिए नए करदार नियुक्त किए गए। *फ़्रैंकी* के 'वेस्टर्न टिबेट' के अनुसार लद्दाखियों की पराजय के कारण वज़ीर बिना किसी विरोध का सामना किए पश्क्युम पहुँच गया।

इन सब गतिविधियों के चलते राजा त्सेपल नमग्यल ने तुरंत 5000 सैनिकों की एक और टुकड़ी खड़ी की जिसने पश्क्युम के पास बहादुरी से युद्ध किया परन्तु लद्दाखी सेना ने इस युद्ध को और अपने सेनापति कालोन दोर्जे नमग्यल दोनों को खो दिया। इसके बाद लद्दाखी सेना जो अब मोरुप स्तनज़िन लोनपो लेह के नेतृत्व में थी हड़बड़ी में पश्क्युम पुल से होकर मुलबेक और शरगोल की तरफ़ भागने लगी। भागते समय रास्ते में पड़ने वाले पुलों को वे नष्ट करते गए परन्तु डोगरों ने हवा से भरे मशक की सहायता से नदी पार कर ली और पश्क्युम दुर्ग पर कब्ज़ा

कर लिया। सर्दियों का आगमन होने वाला था और वज़ीर "रणनीतिक कुशलता का प्रयोग कर पीछे हटना चाहता था।" इस योजना के अनुसार वज़ीर ने लद्दाख के दरबार में यह प्रस्ताव रखा कि 15,000 रुपये की क्षतिपूर्ति भरने पर वह लद्दाख छोड़ देगा। क्रॉनिकल के अनुसार राजा इस प्रस्ताव को मानने के पक्ष में था परन्तु उसकी दबंग रानी ज़ीज़ी ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया। दूसरी ओर राजा ने सारे हृष्ट-पृष्ट युवकों को युद्ध भूमि में जाकर शत्रु का अंत तक सामना करने का आदेश दे डाला। राजा त्सेपेल नमग्यल ने लाचार होकर कालोन पनखापा के नेतृत्व में 2000 सैनिकों की एक और टुकड़ी खड़ी की। इस टुकड़ी को मोरुप स्तनज़िन के नेतृत्व में लड़ रही सेना को बल प्रदान करने के उद्देश्य से भेजा गया। वज़ीर ने करत्से में सर्दियाँ बिताई। लद्दाखी सेना सर्दियों की भीषणता का लाभ नहीं उठा पाई और अप्रैल तक युद्ध को स्थगित कर दिया। अंततः उनको भारी नुक़सान के साथ हार का सामना करना पड़ा और आक्रमणकारी ने उन्हें बुरी तरह खदेड़ा।

अप्रेल के आरंभ में लद्दाखी सेना लङ्-करत्से की ओर बढ़ी। डोगरा के अग्रवर्ती दस्ते ने उनपर आकस्मिक हमला कर दिया और उन्हें बुरी तरह परास्त किया। लेकिन इस दौरान डोगरों को भी नुक़सान उठाना पड़ा। युद्ध में डोगरा वज़ीर उत्तम पधियार, हुजरु वज़ीर और सूरतू राणा भी मारे गए। लद्दाखी अत्यंत निराश थे जबकि डोगरों का हौसला बढ़ गया। मौसम में सुधार होने के साथ-साथ, डोगरों ने भागती हुई लद्दाखी सेना को बिना किसी प्रतिरोध के लामायुरु तक खदेड़ा। लामायुरु में ज़ोरावर सिंह को राजा का एक पत्र मिला जिसमें उसने युद्ध की समाप्ति का प्रस्ताव रखा था और इस शर्त के साथ शांति वार्ता रखी कि राजा की अपनी सुरक्षा क़ायम रहे। ज़ोरावर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शांति निबंधनों पर चर्चा करने के बाद वह लगभग 100 सैनिकों के साथ सारी व्यवस्था को ओपचारिक करने के उद्देश्य से लेह की ओर बढ़ा। इस व्यवस्था के अनुसार, राजा को उसका राज्य इस शर्त पर वापस सौंपा गया कि वह राजा गुलाब सिंह और उसके द्वारा महाराजा रणजीत सिंह की जागीर के तौर पर उसके पास रहेगा। *कनिंघम* के अनुसार राजा को युद्ध की क्षतिपूर्ति के तौर पर 10,000 और 50,000 रुपये का वार्षिक शुल्क अदा करना था। परन्तु क्रॉनिकल में युद्ध की क्षतिपूर्ति का

उल्लेख नहीं मिलता, केवल 5000 रुपये का वार्षिक ख़िराज देने की बात कही गई है। इसके बाद वज़ीर लद्दाख में बिना किसी दुर्ग का निर्माण कराए या सेना की टुकड़ी को ठहराए लेह से चला गया। इससे लद्दाख के कुछ वर्ग जिनमें रानी और राजकुमार भी शामिल थे, डोगरा शासन को उखाड़ फेंकने के लिए तत्पर हुए हालाँकि स्वयं राजा इस क़दम के पक्ष में नहीं था। रानी के परामर्श अनुसार वार्षिक ख़िराज की अदायगी रोक दी गई। वज़ीर के अनुचरों पर मुकदमे चलाए गए और लेह में उसके प्रतिनिधि के रूप में ठहरे मुन्शी दया राम को अनेक कष्ट दिए गए।

ज़ोरावर का द्वितीय अभियान

इन सारी विपरीत परिस्थितियों के बारे में सुनकर, वज़ीर अपनी ज़ोरदार ताक़त के साथ नवंबर सन् 1935 में ज़ांग्स्कर के मार्ग से होकर लेह में आ धमका। यह मार्ग सीधा होते हुए भी बहुत कठिन था। 443 किलोमीटर की कठोर यात्रा करके वह केवल दस दिनों में ल्चेमरे पहुँच गया। उसके इस आकस्मिक और प्रभावशाली दाख़िले से लद्दाखियों के दिल दहल उठे। राजा, जो उस समय शे में था अपने दरबारियों के साथ वज़ीर का स्वागत करने छुशोद पहुँचा। सारी समस्याओं को उत्पन्न करने के दोषी राजकुमार और उसकी माता स्पीती की ओर भागकर अंग्रेज़ों के क्षेत्र बुशहर में राजनीतिक शरण माँगने पहुँचे। लद्दाख से डोगरों को हटाने के लिए शीघ्र सहायता के उनके निवेदन को अंग्रेज़ों ने ठुकरा दिया।

वज़ीर राजा के साथ लेह पहुँचा जहाँ उसने राजा से युद्ध की क्षतिपूर्ति के बक़ाया के तौर पर 13000 रुपये और अपनी सेना के ख़र्च के लिए अलग से कुछ धन लिया। अपने किए पर पश्चात्ताप करने के बावजूद राजा को पदच्युत कर जागीर के तौर पर शे का राजमहल दिया गया जो समय बीतने के साथ उसके वंशजों का स्थायी घर बन गया। इसके साथ ही लद्दाख के स्वतंत्र राजवंश का अंत हो गया। लेह का मोरुप स्तनज़िन पदच्युत राजा का संबंधी था। उसे लद्दाख के नामधारी शासक के रूप में नियुक्त किया गया और उसे प्रति वर्ष 18,000 रुपये का अंशदान दिया जाना तय हुआ। लेह के दक्षिण में स्थित स्कारा गाँव में एक दुर्ग का निर्माण कराने के बाद सन् 1936 के मार्च में ज़ोरावर सिंह जम्मू के लिए रवाना

हुआ। नए राजा के आचरण पर नियंत्रण रखने के लिए वह उसके पुत्र समेत अनेक लोगों को बंदी बनाकर अपने साथ ले गया।[16] मोरुप स्तनज़िन ने 50,000 रुपये के ख़िराज के साथ एक प्रतिनिधि मंडल को रणजीत सिंह के पास भेजा जिससे लद्दाख पर डोगरों का अधिकार सुनिश्चित माना गया।

डोगरों के द्वारा परास्त किए जाने पर भी लद्दाखियों का डोगरा शासन को बाहर फेंकने का जज़्बा बरकरार रहा। जब लद्दाख के मुख्य भाग में विद्रोह भड़क रहा था, तब एक निराधार अफ़वाह फैली कि ल्हासा से एक विशाल सेना डोगरों के साथ युद्ध में राजा की सहायता करने के लिए आ रही है। यह ख़बर पुरीग पहुँची जिससे सोद का राजा विद्रोह का झंडा लहराने को तत्पर हुआ। उसने पसरीखर दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया और जितने डोगरा सैनिक उसके हाथ लगे सबको मार दिया। इससे सुरु करत्से के लोगों में भी उत्साह जागा जो सुरु के दुर्ग की ओर बढ़े और दुर्ग में ठहरे डोगरा सैनिकों का कत्लेआम किया।

वज़ीर को इन गतिविधियों का पता लामायुरु में चला। वह शीघ्र ही पश्क्युम गया जहाँ पहुँचकर उसने इस क्षेत्र के उन सारे राजाओं की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जिन्होंने विद्रोह में भाग लिया था और उन्हें शासन के अधिकार से वंचित कर दिया। परन्तु रहीम ख़ान जिसने इस विद्रोह में भाग नहीं लिया था और वज़ीर के पहले अभियान के समय उसकी काफ़ी सेवा की थी, उसे फ़ोतुला से लेकर द्रास और सुरु तक के सारे क्षेत्र का राज्यपाल नियुक्त कर दिया।

ज़ोरावर का तीसरा आक्रमण

कश्मीर के राज्यपाल मान सिंह के उकसावे में आकर पुरीग के लोगों ने डोगरों के विरुद्ध एक विद्रोहपूर्ण मार्ग अपना लिया। डोगरों के विश्वसनीय राज्यपाल रहीम ख़ान ने राजा मोरुप स्तनज़िन तथा अन्य सामन्तों को भी यही मार्ग अपनाने के लिए उकसाया। इस विद्रोह की सफलता के लिए उसने कश्मीर के राज्यपाल और स्कर्दू के राजा से भी सहायता माँगी और राजा से निवेदन किया कि वह ल्हासा से भी सैन्य मदद माँगे। कारगिल में वज़ीर के प्रतिनिधि निदान सिंह की हत्या कर दी गई

[16] Cunningham, Ladakh,pp. 341-42; Francke, Western Tibet, p-150

और लद्दाख़ में तैनात डोगरा के संदेशवाहक का भी अपमान किया गया। डोगरों को निर्धारित ख़िराज की अदायगी भी रोक दी गई।

इन अप्रत्याशित गतिविधियों ने वज़ीर के क्रोध को भड़का दिया और उसने निश्चय किया कि वह न केवल इस विद्रोह को कुचल देगा बल्कि विद्रोही को भी सबक़ सिखाएगा इसलिए उसे सन् 1839 में 5000 सैनिकों के साथ लद्दाख के अपने तीसरे अभियान पर निकलना पड़ा। जब षडयंत्रकारियों को वज़ीर के इस तूफ़ानी आगमन की सूचना मिली तो सब भाग खड़े हुए। राजा मोरुप स्तनज़िन स्पीती की तरफ़ निकल पड़ा परंतु उसे गिरफ़तार करके वापस लेह लाया गया। मोरुप स्तनज़िन के पदच्युत होने के वर्ष को लेकर हालाँकि मतभेद है परंतु क्रॉनिकल द्वारा प्रस्तावित सन् 1839 सबसे संभावनीय वर्ष प्रतीत होता है। इस बार वज़ीर ने लद्दाख को ओपचारिक रूप से जम्मू के राज्य में मिला लिया। मियाँ मगना को थानेदार और ओनपो रिगज़िन को कालोन या सहायक नियुक्त किया गया। त्सेपल नमग्यल को लद्दाख के नामधारी शासक के तौर पर पुनः स्थापित किया गया। वज़ीर ने तब अपना ध्यान बाल्तीस्तान पर कब्ज़ा करने के उद्देश्य की ओर लगाया जहाँ अनेक वंशगत प्रधान शासन कर रहे थे।

बाल्तीस्तान पर आक्रमण

ज़ोरावर सिंह के लद्दाख पर प्रथम आक्रमण के समय स्कर्दू के राजा अहमद शाह ने अपनी पहली बीवी से जन्मे बेटे मोहम्मद शाह को दूसरी बीवी से जन्मे बेटे मो. हम्मद अली ख़ान के हक़ में किनारा कर दिया था। वज़ीर ने मोहम्मद शाह को पनाह दी जो फ़रवरी सन् 1839 में वज़ीर के बाल्तीस्तान हमले के समय लद्दाख में आकर बस गया था। स्कर्दू का शासक अहमद शाह वहाँ का सबसे शक्तिशाली शासक था जबकि अन्य वंशगत प्रधान जो उसके क़रीबी संबंधी थे जैसे परकूटा का राजा गुलाम शाह, रोन्दो का राजा अली ख़ान, खरमङ् का राजा अली शेर ख़ान आदि की उसके प्रति वफ़ादारी रहती थी। अहमद शाह के राजवंश ने तो उस क्षेत्र पर पीढ़ियों से शासन किया था।

स्कर्दू के सिंहासन का उत्तराधिकारी होने पर भी अधिकार से वंचित किए जाने से मोहम्मद शाह को काफ़ी ठेस पहुँची। उसने वज़ीर से सहायता माँगी। वज़ीर ने उसे सहानुभूति दी और हरसंभव सहायता देने का वचन दिया। परंतु इस बीच स्कर्दू की सेना लद्दाख में घुस आई और मोहम्मद शाह को उठा ले गई, जिससे वज़ीर को आघात पहुँचा। उसने अहमद शाह को याद दिलाया कि मोहम्मद शाह जम्मू की सरकार का आश्रित है और उसे इस प्रकार उठा ले जाना दोनों क्षेत्रों के बीच जारी सामान्य राजनयिक संबंधों के नियमों का उल्लंघन है। उसने राजा को चेतावनी दी कि अगर मोहम्मद शाह को मुक्त नहीं किया तो वह सैनिक कार्यवाही करने के लिए विवश हो जाएगा। अहमद शाह ने वज़ीर की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। वज़ीर ने कालोन पनखापा के नेतृत्व में 8000 लद्दाखियों की सेना की व्यवस्था की। वृद्ध राजा त्सेपेल नमग्यल को भी डोगरा सेना के साथ बाल्तियों का सामना करने के लिए जाना पड़ा।[17] आक्रमण के लिए सेना को दो भागों में बाँटा गया था। लद्दाखी दस्ते का नेतृत्व डोगरा अधिकारी मोहीउद्दीन शाह हनु-छोरबत मार्ग द्वारा कर रहा था। अपनी बेहतर डोगरा सेना के साथ वज़ीर गरखोन की ओर रवाना हुआ।

लद्दाखी टुकड़ी बज़्गो और खलत्से से गुज़रकर सिंध और गोमा हनु के साथ-साथ होती हुई छोरबत दर्रा पार कर पहले चुन्गा पहुँची और अंततः खपलू। इन आक्रमणकारियों ने अपना अभियान किरिस और स्कर्दू तक जारी रखा जोकि बाल्तीस्तान का मुख्य ज़िला है।[18] ज़ोरावर सिंह खुद स्कर्दू की तरफ़ बढ़ता हुआ श्रीनगर-लेह मार्ग से होकर कारगिल पहुँचा। द्रास और कारगिल में थानेदार नियुक्त करने के बाद वह सिंध नदी को गरखोन के समीप पार कर पसरीखर पहुँचा जहाँ उसने विद्रोहियों को उचित दंड दिया, हालाँकि उनमें से कुछ बाल्तीस्तान भागने में सफल हो गए। डोगरा सेना स्कर्दू की तरफ़ लगातार बढ़ती रही लेकिन अहमद शाह को इसकी सूचना मिली और उसने अपने दोनों मोर्चों पर वज़ीर की सेना को रोकने के लिए अपनी सेना भेजी। खाद्य एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों की कमी, उसपर

[17] Francke, Antiquities, Vol II, pp, 131, 253
[18] Hashmat Allah, Tarikh-i-jammu, p-363

दर्रों के बंद हो जाने से डोगरों को आगे बढ़ने में मुश्किलें आईं परंतु करनल बस्ती राम की कुशलता का परिणाम था कि वे वान्को दर्रे के पास आधी जमी हुई नदी को पार कर पाने में सफल हुए जिससे बाल्तियों में हड़बड़ाहट मच गई। सन् 1840 की फ़रवरी में यहाँ एक भीषण युद्ध लड़ा गया जिसमें डोगरा सेना की निश्चित जीत हुई और बाल्ती सेना के वज़ीर गुलाम हुसैन को मार गिराया गया। बाल्तियों के साहस को इससे गहरा धक्का लगा।

डोगरों की यह जीत बाल्तीस्तान पर कब्ज़ा करने और भागते हुए बाल्तियों को तोलती, परकुटा और गोल तक खदेड़ने के लक्ष्य में महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। खपलू मार्ग से आगे बढ़ती हुई लद्दाखी टुकड़ी को भी विषम सर्दी के कारण बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किरिस के समीप बाल्तियों की डोगरा सेना से टक्कर हो गई जिसमें बाल्तियों की पराजय हुई। इसके बाद डोगरा सेना और खपलू एवं किरिस के शासक जिन्होंने डोगरों के प्रति आत्मसमर्पण किया था, ज़ोरावर सिंह की मुख्य सेना के साथ मिलकर स्कर्दू की ओर बढ़ने लगे।

सिर पर मंडराते विनाश की कल्पना करते स्कर्दू के राजा अहमद शाह ने स्कर्दू के उत्तर में स्थित एक अनजान पहाड़ी पर खड़े दुर्ग में स्वयं को बंद कर लिया। डोगरों द्वारा इस दुर्ग पर कब्ज़ा करने को लेकर दो विवरण मिलते हैं। कुछ प्रेक्षकों का मत है कि डोगरों ने इस दुर्ग को घेर लिया परन्तु 15 दिनों तक भी कोई हमला नहीं कर पाए। माना जाता है कि परतकशा का राजा शेर अली ख़ान और डोगरा वज़ीर मोहीउद्दीन शाह क़िले के भीतर गए और अहमद शाह को विश्वास दिलाया कि अगर उसने बाहर चलकर वज़ीर के आगे आत्मसमर्पण किया तो उसकी सुरक्षा क़ायम रहेगी। उनकी बातों पर विश्वास कर राजा बाहर आया और अपने काल से मिल गया। दूसरे विवरण के अनुसार एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अनेक बाल्ती मारे गए या बंदी बना लिए गए। इनमें अहमद शाह भी शामिल था। *फ़ेड्रिक ड्रू* डोगरों के इस क़दम को ब्रिटिश द्वारा क्यूबेक पर कब्ज़ा करने वाली घटना का लघु रूप मानते हैं।[19] अहमद शाह को अंत में पदच्युत किया गया और उसके स्थान पर मोहम्मद शाह को स्कर्दू के नए राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। स्कर्दू की

[19] Fredrick Drew, Northern Barriers, p-207

पराजय के बाद करतकशा, तोलती, खपलू, शिगर और किरिस के राजाओं ने भी डोगरा गद्दी की ओर अपनी राजभक्ति निश्चित की। इसके बाद ज़ोरावर सिंह सेना की एक छोटी टुकड़ी के साथ खपलू पहुँचा और बिना किसी प्रतिरोध के उसपर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन रोनदो और अस्तोर के राजा अली ख़ान और जब्बर ख़ान आसानी से मानने वाले नहीं थे। इसलिए वज़ीर ने अपना ध्यान रोन्दो की ओर लगाया। मोहीउद्दीन के नेतृत्व में डोगरा के एक सैनिक दल को इस महत्त्वपूर्ण रियासत पर अधिकार करने की योजना समझाई गई। इस कार्य में खरमङ् के अली शेर ख़ान ने उसकी सहायता की। रोन्दो बिना अधिक प्रतिरोध के डोगरों के हाथ आ गया। इस क्षेत्र का राजा अली ख़ान भाग चुका था। 15,000 रुपये हर्ज़ाना अदा कराने और राजा गुलाब सिंह के प्रति आत्मसमर्पण कराने के बाद उसका पद वापस सौंपा गया।

इसके बाद अस्तोर को विस्तृत होते डोगरा साम्राज्य में मिलाने की बारी आई। गिलगिट पर कब्ज़े के लिए रास्ता साफ़ करने के उद्देश्य से मोहीउद्दीन शाह को यह महत्त्वपूर्ण कार्य भी सौंपा गया। उसने अस्तोर दुर्ग को लगभग 20 दिनों तक घेरे रखा, जल मार्ग काट दिया और राजा जब्बर ख़ान को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया। लेकिन जब कश्मीर के राज्यपाल ने इस धरातल पर आपत्ति जताई कि अस्तोर सिख अधिकृत क्षेत्रों में आता है तब राजा को उसका पद वापस सौंपा गया। डोगरों को वापस स्कर्दू लौटना पड़ा और अपने अभियानों पर अस्थायी रोक लगानी पड़ी। आगे चलकर सन् 1840 में वज़ीर डोगरों के साथ लद्दाख वापस आया और अहमद शाह को उसके उच्च पदस्थ एवं अन्य सहायकों समेत पदच्युत कर दिया।

इसी समय के आसपास, शवों की क़तार पीछे छोड़े जाने के कारण खपलू में चेचक की महामारी फैल गई। इनमें राजा त्सेपेल नमग्यल का शव भी शामिल था। इसलिए वज़ीर ने लेह पहुँचकर दिवंगत राजा के पोते जिगमेत नमग्यल को, जो उस समय नाबालिग था, राजा के पद पर प्रतिष्ठित कराया। उसका राज्याभिषेक राजभवन में प्रथागत अनुष्ठानों के अनुसार वज़ीर समेत लद्दाख के उच्चाधिकारियों की उपस्थिति में किया गया।

आक्रमण

बाल्ती युद्ध के सफल समापन भर से ही ज़ोरावर के विस्तारवादी आकांक्षाओं को तृप्ति नहीं मिली। अब उसका लक्ष्य यारकन्द और फिर पूरें केन्द्रीय एशिया पर अधिकार करना था। उसका पहला उद्देश्य केन्द्रीय तिब्बत द्वारा अधिकृत पश्चिमी तिब्बत पर कब्ज़ा करना था। उस समय ज़ोरावर के नेतृत्व में 400 की सेना थी जिसे 5000 और स्थानीय सैनिकों से मज़बूत बनाया गया। पश्चिमी तिब्बत का यह क्षेत्र पूर्व में मायुम दर्रे और पश्चिम में लद्दाख की सीमा तक फैला हुआ है। उसके उत्तर में चङ्थङ् के पठार हैं और दक्षिण में वह हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग को छूता है।

स्थानीय सैनिकों के नेतृत्व का भार पहले पदच्युत राजा मोरुप स्तनज़िन को सौंपा गया जिसने भावात्मक आधार पर ल्हासा के विरुद्ध लड़ने से मना कर दिया। इसके बाद इस कार्य के लिए उसके छोटे भाई नोनो सोनम और अन्य लोगों को चुना गया जिनमें छुशोद का भूतपूर्व राजा गुलाम ख़ान और बज़्गो का भूतपूर्व मंत्री त्सेवङ् स्तोबदन आदि शामिल थे। पश्चिमी तिब्बत पर ज़ोरावर सिंह के कब्ज़े के तीन कारण बताए जाते हैं। इस अभियान का पहला उद्देश्य था कि पश्चिमी तिब्बत में पैर जमाकर नेपाल से संधि हेतु हिमालय की दूसरी तरफ़ से लद्दाख से नेपाल तक दुर्गों की श्रृंखला बनाई जा सके। दूसरा उद्देश्य था पश्चिमी तिब्बत में जो सोने के खानों के होने की सूचना मिली थी, उनको हथियाना और तीसरा यह कि तिब्बत से पश्मीना ऊन को लद्दाख से होते हुए कश्मीर भेजा जा सके।[20]

सन् 1841 के अप्रैल में ज़ोरावर सिंह ने पश्चिमी तिब्बत पर तीनों तरफ़ से हमला किया। गुलाम ख़ान ने एक टुकड़ी का नेतृत्व किया जो अन्ले से होकर रुपशो में दाखिल हुआ और वहाँ से छुरीत, चुमुर्ती, त्सापारङ् और थोलिङ् आदि तिब्बती चौकियों से होते हुए आगे बढ़ी। तिब्बती सेना की ओर से अधिक विरोध का सामना उसे नहीं करना पड़ा। प्राप्त जानकारी के अनुसार उसने उपरोक्त सारे

[20] G.L. Datta, Zorawar Singh, p-67

स्थानों में बौद्ध मठों को लूटा।[21] सेना की दूसरी टुकड़ी नोनो सोनम के नेतृत्व में थी जिसने सिंध के साथ-साथ होते हुए टाशीगोङ् पर कब्ज़ा किया और लूट-पाट मचाई। तीसरी टुकड़ी स्वयं ज़ोरावर सिंह के नेतृत्व में चङ्ला टङ्त्से मार्ग से रुदोक की तरफ़ बढ़ी जिसे उसने 5 जून, 1841 को बिना अधिक प्रतिरोध के अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद डोगरा सेना पश्चिमी तिब्बत के ज़िला केन्द्र गरतोक की तरफ़ रवाना हुई। इस कार्यवाही के लिए डोगरा सेना को फिर से दो भागों में बाँटा गया। ज़ोरावर सिह के नेतृत्व में पहली टुकड़ी लूबरा से होती हुई आगे बढ़ी और दूसरी टुकड़ी मेहता बस्ती राम के नेतृत्व में सिंध के साथ-साथ आगे बढ़ी। मार्ग में कुछ कमज़ोर विरोधों का सामना करने के बाद दोनों सेनाएँ गरतोक में मिलीं। डोगरों का आक्रमण तिब्बतियों पर भारी पड़ा और वे सेनापति पीशी शाटा के नेतृत्व में तगला खर की तरफ़ भागे। पराक्रम पूर्वक युद्ध करने के बावजूद तिब्बती सेना की हार हुई। पश्चिमी तिब्बत में पैर जमाने के अपने उद्देश्य की प्राप्ति के बाद, ज़ोरावर सिंह ने अपने नए राज्यों को संघटित करते हुए रक्षानीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सारे स्थलों पर क़िलों का निर्माण कराया और वहाँ डोगरा सेना तैनात कराई। जम्मू के राज्य की सीमाएँ तब नेपाल को और ब्रिटिश सरकार अधिकृत इलाहाबाद प्रान्त के कुमाऊँ ज़िले को भी छूती थी।

पश्चिमी तिब्बत पर डोगरों के कब्ज़े को ल्हासा की सरकार ने स्वीकृति नहीं दी। कालोन सुरखङ् के नेतृत्व में डोगरों को बाहर खदेड़ने के लिए 10,000 सैनिकों की एक सेना पुरानी सेना को कुमक पहुँचाने के लिए भेजी गई। ज़ोरावर सिंह उस समय मानसरोवर से होकर लद्दाख जा रहा था। जब उसे तिब्बती सेना के इस कदम का पता चला, उसने अपनी पत्नी और अन्य डोगरा महिलाओं को उनकी सुरक्षा के लिए किश्तवाड़ भेज दिया और स्वयं ल्हासा के इस आक्रमण का सामना करने के लिए युद्ध में कूद पड़ा। तब तक सर्दियाँ आ चुकी थीं और भारी हिमपात ने केन्द्रीय तिब्बत को पश्चिमी तिब्बत के डोगरा अधिकृत क्षेत्र से जोड़ने वाले मायुम दर्रे को बंद कर दिया था। इससे डोगरों को विश्वास हो गया कि युद्ध वसंत के आने तक टल जाएगा लेकिन तिब्बती सेना एक खुफ़िया उपमार्ग से दर्रे को पार कर

[21] Cunningham, Western Tibet, pp-162-63

गई और अचानक हमला कर डोगरा चौकी को घेर लिया। डोगरों को जान माल का काफी नुकसान हुआ। गरतोङ् में स्थित डोगरा की दुर्गसेना को कुचल दिया गया जो मियाँ अवतारा किश्तवाड़िया के नियंत्रण में थी। बस्ती राम द्वारा नियंत्रित टगला खर को भी घेरकर उसे मुख्य सेना से काट दिया गया।

दिसंबर का महीना था, सर्दी अपनी चरम पर थी और रसद भी बहुत कम थी। इन सब कठिनाइयों के बावजूद 10 दिसंबर, 1841 को ज़ोरावर सिंह टगला खर और गरतोङ् के बीच स्थित टोयो नामक स्थान पर शत्रु पर टूट पड़ा। इस दौरान उसके दाहिनी जाँघ में गोली लगी और वह अपने घोड़े से गिर पड़ा। फिर भी वह अपनी तलवार से शत्रु पर अविश्वसनीय ढंग से वार करता रहा। जब तिब्बतियों को विश्वास हो गया कि उसे जीवित पकड़ना कठिन है, उन्होंने दोङ्[22] से वज़ीर पर वार करने का निर्णय लिया।[23] इस शस्त्र के प्रयोग में माहिर एक तिब्बती सैनिक ने ज़ोरावर की पीठ पर इससे वार किया, जिसने उसका सीना चीर दिया। हाथ में तलवार लिए ही सेनापति मृत्यु को प्राप्त हो गया।

इस प्रकार इस वीर सेनापति का अंत हुआ। जिस स्थान पर वज़ीर ने अपनी अंतिम साँस ली थी वहाँ उसकी स्मृति में एक भव्य स्तूप बनवाया गया। तिब्बती लोग वज़ीर को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उसके सिर को ल्हासा के एक भव्य स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया और उसके शरीर का कुछ भाग टाशीगोङ् मठ में रखा गया। तिब्बती लोग इन स्थानों पर प्रार्थना किया करते थे कि वज़ीर फिर कभी मनुष्य रूप धारण करके ल्हासा पर अधिकार करने के अपने उद्देश्य में सफल न होने पाए।[24]

ज़ोरावर सिंह की मृत्यु से डोगरा सेना को गहरा धक्का लगा। डोगरों की पराजय का मुख्य कारण था कठोर और अशरण्य भूमि, ऊँचाई पर स्थित क्षेत्र की विषम सर्दी, रसद का दूरस्थ स्रोत और अप्रशिक्षित, शस्त्र की दृष्टि से अभावग्रस्त

---

[22] लगभग 5 फीट लंबी बरछी जिसके बीच में रस्सी बँधी होती है और वार करने से पहले उसे एक छोर से पकड़कर गोल-गोल घुमाया जाता है।

[23] Shridhar Kaul & H.N.Kaul, Ladakh Through the Ages, Towards a New Identity

[24] Ibid, p- 85

और अनिष्ठावान बाल्ती, लद्दाखी और अन्य सैनिक जिनकी संख्या डोगरा सेना में अधिकतम थी। इस अभियान में डोगरों को भारी नुक़सान उठाना पड़ा और मुश्किल से 2500 सैनिक ही जीवित बचे जिनमें से 1000 को बंदी बना लिया गया। बचे हुए 1500 सैनिक जिनमें से लगभग 100 की जिम्मेवारी डोगरों ने नहीं ली थी, किसी प्रकार लेह पहुँचने में सफल हुए। शेष सभी वज़ीर जैसे मियाँ राय सिंह, त्सेवङ् स्तोबदन, कालोन बज़्गो, नोनो सोनम, गुलाम ख़ान, मोरुप स्तनज़िन, अहमद खान आदि को बंदी बनाकर ल्हासा ले जाया गया।

टोयो की दुर्घटना ने न केवल ल्हासा पर अधिकार करने के डोगरों के सपने को चूर-चूर कर दिया, बल्कि इसने लद्दाखियों और बाल्तियों में डोगरों के चंगुल से आज़ाद होने की इच्छा को दोबारा जगा दिया। इसलिए लद्दाख और बाल्तीस्तान में दोबारा सेना भेजनी पड़ी। लद्दाखियों ने ल्हासा के सेनापति पीशी शाटा से लद्दाख में उपस्थित डोगरा सेना को हटाने और राजा के शासन को वापस लाने में उनकी सहायता करने की अपील की। इसलिए सन् 1842 के आरंभ में उपरोक्त सेनापति ने 3000 की सेना के साथ गर से लद्दाख की ओर प्रस्थान किया। ओन्पो त्सेवङ् रबतन और आचो गोनबो भी अपनी-अपनी टुकड़ियों के साथ लेह की ओर बढ़े जहाँ वे ल्हासा की सेना से मिले। इन सेनाओं ने लेह के राजमहल में प्रवेश कर ग्यलपो त्सेवङ् नमग्यल के पोते जिगमेत नमग्यल को लद्दाख का स्वतंत्र राजा घोषित किया।

लद्दाख में डोगरा सेना का नेतृत्व मगना थानेदार और पहलवान सिंह कर रहे थे। मगना थानेदार लेह किले की रक्षा का कार्यभार संभाल रहा था और पहलवान सिंह करजू बाग़ में ठहरी टुकड़ी का नेतृत्व कर रहा था परन्तु स्वयं लेह किले के पास तैनात रहता था। इन दो डोगरा वज़ीरो ने मिलकर इसी क़िले के पास शत्रु पर हमला किया और उन्हें बुरी तरह हरा दिया। ल्हासा और लद्दाख दोनों की सेना ने काफ़ी सारे सैनिकों को खो दिया और इस हार से दोनों का मना. `बल टूट गया। जब इस विद्रोह की सूचना पुरीग पहुँची, तो वहाँ भी डोगरों के विरुद्ध विद्रोह सिर उठाने लगा। पुरीग में उपद्रव का माहौल फैल गया, जिस दौरान इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर डोगरा सैनिकों की हत्याएँ होने लगीं। मुलबेक के

मंत्री के कार्यक्षेत्र में तैनात डोगरा सैनिकों को वाखा नदी में फेंक दिया गया और सोद के राजा ने पसरीखर और अन्य केन्द्रों पर डोगरा सैनिकों की हत्या करवाई। परन्तु पश्क्युम के राजा ने इस विद्रोह को अपना पूरा सहयोग नहीं दिया। उसने डोगरा सैनिकों को अपने दुर्ग में कैद कर लिया परन्तु उनकी हत्या नहीं कराई। इस अशांतिपूर्ण स्थिति से जहाँ पूरा लद्दाख घिर गया, वहीं द्रास आश्चर्यजनक रूप से इससे अछूता रहा।

बाल्तीस्तान ने भी नवीन उत्साह के साथ विद्रोह किया। राजा अहमद शाह ने डोगरों की गुलामी को उखाड़ फेंकने के लिए एक रणनीति बनाई। अपने विश्वासपात्रों के द्वारा पूरे बाल्तीस्तान में डोगरों के विरुद्ध विद्रोह भड़काने में वह सफल हुआ। विद्रोह के बोये गए इस बीज से डोगरों के भूतपूर्व कठपुतलियों जैसे रोन्दो के राजा दौलत अली ख़ान, खपलू के राजा खुर्रम ख़ान और केरिस के राजा आदि को एक किया। शिगर के हैदर ख़ान ने डोगरों के बाल्ती अनुचरों को प्रभावित कर विद्रोह में खींचने में प्रमुख भूमिका निभाई। उसने शिगर के राजा सुलैमान खान को बंदी बनाकर उसकी सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर लिया। स्कर्दू के राजा मोहम्मद शाह जिसने इस विद्रोह में भाग लेने से मना कर दिया था, उसे ख़ानक़ा क्वरदो में बंदी बनाकर रखा गया। संक्षेप में, बाल्तीस्तान से डोगरा शासन का नामो-निशान मिटा दिया गया।

जब महाराजा गुलाब सिंह को ज़ोरावर सिंह की मृत्यु, पश्चिमी तिब्बत के उसके अनर्थकारी अभियान और उसके बाद हुए बाल्ती और लद्दाखियों के विद्रोह की सूचना मिली तब उसने दीवान हरि चन्द को एक नई सेना के वज़ीर के तौर पर अगले अभियान के बारे में समझाया। उसकी सेना कश्मीर से होती हुई कारगिल पहुँची जहाँ बाल्तियों के विरोध के बाद भी उन्हें पराजित कर दिया गया। दीवान ने पसरीखर दुर्ग को आग लगाकर नष्ट कर दिया और कारगिल में एक मज़बूत दुर्ग का निर्माण कराया। वहाँ से वह पश्क्युम की तरफ़ बढ़ा जहाँ पहुँचकर उसने विद्रोह का नेतृत्व करने वाले लोगों को तरह तरह के दंड दिए और फिर लेह की ओर प्रस्थान किया। डोगरों के आगमन की ख़बर सुनकर लद्दाखियों ने इस नई चुनौती का सामना करने के लिए स्वयं को जल्दी-जल्दी व्यवस्थित किया परन्तु डोगरों के

नज़दीक पहुँचते-पहुँचते लद्दाखियो की सेना घटने लगी और तिब्बती सेना भी ल्हासा की तरफ़ भागने लगी। जिगमेत नमग्यल, जिसे स्वतंत्र राजा घोषित किया गया था, अपनी माता के साथ ल्हासा की ओर भागा और लेह का राजमहल, जो इन विद्रोहियों का अड्डा बना हुआ था, खाली हो गया।

लेह के पास अपना झंडा गाड़ने के बाद दीवान हरि चन्द ने मियाँ जवाहर सिंह के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी को ज़ांग्स्कर में विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा। प्रशासनिक कारणों से कुछ लोगों को नूबरा भी भेजा गया। इसके बाद उसने अपना ध्यान लेह के राजमहल की ओर लगाया, जहाँ उसने सोने-चाँदी की सारी वस्तुओं पर अपना हाथ साफ़ कर दिया। मठों से भी बहुमूल्य वस्तुओं को उठाया गया लेकिन पापशंकालुता के कारण धार्मिक वस्तुओं को छूने और अपवित्र करने से वह बचा रहा। फिर भी उसने विद्रोहियों को नहीं बक्शा और न ही इस संकट में डोगरों का साथ देने वालों को पुरस्कृत करने से वह पीछे हटा। ल्हासा के सेनापति पीशी शाटा को जब डोगरा सेना की दो अलग टुकड़ियों के ज़ांग्स्कर और नूबरा रवाना होने की सूचना मिली, उसे लेह में तैनात डोगरों पर आक्रमण करने की सूझी। उसने अपने छोटे भाई छग छोङ् को 100 सैनिकों के साथ इस अभियान पर भेजा। डोगरा की एक छोटी टुकड़ी इस सेना से ल्चेमरे में सारदुल सिंह और राजीमल मुन्शी के नेतृत्व में मिली। तिब्बतियों ने साहस के साथ इनका मुकाबला किया लेकिन हारने की स्थिति में ल्चेमरे मठ में शरण ले ली। दीवान स्वयं इन तिब्बतियों का सामना करने लेह से ल्चेमरे पहुँचा। ल्चेमरे पहुँचकर उसने मठ को घेर लिया, पानी का माध्यम काट दिया और तिब्बतियों को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया। सारदुल सिंह और राजीमल को वहाँ की बागडोर सौंपकर दीवान ने लेह की ओर प्रस्थान किया।

एक रात ल्चेमरे मठ में बंद तिब्बती कैदियों ने पहरदारों पर आक्रमण किया और भाग खड़े हुए। इसकी सूचना मिलने पर दीवान ने उनकी खोज शुरू कर दी और लगभग 400 लोगों को पकड़ लिया। जबकि बचे हुए लोग ल्हासा की ओर भागने में सफल हो गए और पीशी शाटा को इन गतिविधियों की सूचना दी। तिब्बतियों की 6000 की विशाल सेना के साथ वह टङ्त्से की ओर बढ़ा और लोङ् कोङ्मा में

खाईबंदी की। आमने-सामने की इस टक्कर में तिब्बती सेना की बुरी तरह से हार हुई और उसे अपने दुर्गों में जाकर शरण लेनी पड़ी। डोगरों ने दुर्गों को घेर लिया, जिससे अंततः तिब्बतियों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। दीवान की तरफ़ से काज़ी नादिर अली और वज़ीर नुतासदी ने शांति समझौते की बातचीत की। तिब्बती सेना के अधिकारियों को दीवान के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया। परन्तु मोरुप स्तनज़िन, आचो गोनबो और अहमद शाह आदि, जिन्होंने डोगरों के विरुद्ध युद्ध किया था, उन्हें बंदी बना लिया गया। हालाँकि वज़ीर ज़ोरावर के ल्हासा पर अधिकार करने की महत्त्वाकांक्षा अब पूरी की जा सकती थी परन्तु इस ओर प्रयास करना तो दूर, जो क्षेत्र वास्तव में उसने जीते थे उन्हें भी वापस नहीं लिया जा सका।

ल्हासा की सरकार ने शांति का प्रस्ताव रखा। इस शांति वार्ता का प्रति. निधित्व पीशी शाटा और कालोन ज़रखंद ने किया जिन्हें मुक्त कर दिया गया था। दीवान हरि चंद और वज़ीर रत्नु जम्मू के प्रतिनिधि थे। मगना थानेदार ने लद्दाख के प्रशासन का कार्य अपने हाथों में लिया और इस कार्य में ओन्पो रिगज़िन उसका सहयोगी बना।

शांति संधि

17 सितंबर 1842 को उपरोक्त ल्हासा और जम्मू की सरकार के प्रतिनिधियों ने शांति संधि पर हस्ताक्षर किए। संधि नियमों के अनुसार ज़ोरावर सिंह के पहले आक्रमण के समय राजा त्सेवङ् टुनडुप नमग्यल के अधिकार में लद्दाख के जो क्षेत्र थे, उनपर लद्दाख का ही अधिकार बना रहा। बाद के आक्रमणों में जीते गए रुदोक, पुरंग आदि क्षेत्र भी पहले की तरह ल्हासा के अधिकार में आया। लद्दाख और ल्हासा के बीच पुराने समय की तरह मैत्रीपूर्ण संबंधों को सुरक्षित रखा गया और संधि के हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा इसे विधिवत् स्वीकृति दी गई।

पदच्युत राज मोरुप स्तनज़िन, उसके पुत्र ग्युरमेत, ईशे टुनडुप, त्सेरिङ् स्तोबग्यस और आचो गोनबो आदि विद्रोही नेताओं को दिवान बंदी बनाकर अपने साथ जम्मू ले गया। ग्युरमेत और ईशे टुनडुप जहाँ कुछ वर्षों बाद लद्दाख वापस

आ पाए, बाकी लोगों की जम्मू में ही मृत्यु हो गई। दीवान कारगिल के राजा और कुछ अन्य बाल्ती उच्चाधिकारियों को भी बंदी बनाकर जम्मू ले गया था। इनमें से सोद के राजा सलाम ख़ान की जम्मू में मृत्यु हो गई। अन्य लोग कुछ वर्षों बाद अपने घर वापस आ गए। राजा जिगमेत नमग्यल भी अपनी माता के साथ लद्दाख लौट आया। उन्हें स्तोक की जागीर को रखने की अनुमति दे दी गई।

जिगमेत नमग्यल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सोनम नमग्यल ने उसका पद ग्रहण किया और सन् 1914 तक लद्दाख का नामधारी शासक बना रहा जिसके बाद उसने मठ का जीवन अपना लिया। उसका पुत्र जिगमेत डादुल नमग्यल उत्तराधिकारी बना जो बाद में कश्मीर विधान सभा का सदस्य हुआ। लद्दाख में अब अशांति नहीं थी। इसके बाद जम्मू-कश्मीर के उपांग के तौर पर लद्दाख का भाग्य निर्धारित कर दिया गया।

बाल्तीस्तान में विद्रोह फैला हुआ था। स्कर्दू और शिगर की सारी गतिविधियों का नेतृत्व हैदर ख़ान कर रहा था। इस चुनौती का सामना करने के लिए, महाराजा गुलाब सिंह ने वज़ीर लखपत को 3000 की सेना के साथ बाल्तीस्तान भेजा। वज़ीर के इस कदम के बारे में सुनकर हैदर ख़ान ने खुद को अप्रवेश्य खरपोछे क़िले में बंद कर लिया। स्कर्दू पहुँचकर वज़ीर ने क़िले को घेर लिया परन्तु दुर्गम जगह पर स्थित होने के कारण अंदर घुस पाना संभव नहीं था। हालाँकि वह प्रधान पहरेदार वज़ीर मोहम्मद अली को अपनी ओर मिलाने में सफल हुआ ; जिसने एक रात फाटक खुला छोड़ दिया। वज़ीर लखपत ने फ़ाटक पर धावा बोल दिया, जो पहले से ही खुला हुआ था और बिना किसी रुकावट के दुर्ग के अंदर घुसकर सैनिकों का क़त्लेआम किया। जीवित सैनिक इधर-उधर भागने लगे। कुछ दौड़कर भागने में सफ़ल हुए, कुछ सिंध में तैरकर निकल भागे और कुछ डूब गए। भोर होते-होते, दुर्ग पर डोगरा सेना का झंडा गाड़ा जा चुका था।

ख़तरा भांपकर हैदर ख़ान दुर्ग के उत्तरी फाटक से अपने सैनिकों के साथ भाग निकला। उसने यारकंद भागने की योजना बनाई थी परंतु शिगर पहुँचने पर दौलत अली ने उसकी योजना पर पानी फेर दिया। दौलत अली को उसके मंसूबों

96की सूचना पहले ही मिल चुकी थी। जम्मू के सिंहासन के प्रति अपनी निष्ठा के कारण हैदर ख़ान और उसके साथियों को स्कर्दू में वज़ीर लखपत के हवाले करने को वह तत्पर हुआ। हैदर ख़ान को बंदी बनाकर जम्मू भेजा गया जहाँ कारावास में ही उसकी मृत्यु हो गई।

वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने स्कर्दू में सतपरा नाला के बायीं किनारे पर पहाड़ी के ऊपर एक दुर्ग की नींव रखी थी। वज़ीर लखपत ने इस कार्य को पूरा किया और भगवान सिंह के नियंत्रण में 300 सैनिकों को वहाँ रखा। इस सेना के रख-रखाव के लिए गेहूँ, मक्खन, नमक, चारा और लकड़ी आदि का वार्षिक कर लगाया गया। राजा द्वारा राजस्व अलग से दिया जाता था। परंतु प्रजा पर कोई भूमि कर नहीं लगाया गया और न ही उनसे कोई हर्ज़ाना लिया गया।

विद्रोह के दौरान जो लोग जम्मू के सिंहासन के पक्ष में खड़े रहे उन्हें पुरस्कृत किया गया। मुहम्मद ख़ान को दोबारा स्कर्दू का शासक बनाया गया। इसी प्रकार खपलू और केरिस के राजा दौलत ख़ान और खुर्रम ख़ान को उनके राज्य वापस सौंपे गए। राजा अली शेर ख़ान और राजा अहमद ख़ान अपने-अपने राज्यों करतकशा और तोलती के शासक बने रहे। इसके बाद वज़ीर ने इमाम कुली ख़ान को शिगर का राजा बनाने के लिए वहाँ की ओर प्रस्थान किया और वहाँ से वह रोन्दो में राजा अली ख़ान के क्षीण विरोध को कुचलने के लिए चल दिया। हालाँकि उसे अपनी जागीर रखने की अनुमति दे दी गई, लेकिन उसके पुत्र हुसैन को बंदी बनाकर जम्मू ले जाया गया। अंत में, वज़ीर अस्तोर में उठे विद्रोह को कुचलने के लिए बढ़ा और इस कार्य को करने के बाद स्कर्दू लौटा। पुरीग पहुँचकर उसने इस क्षेत्र के सारे विद्रोही नेताओं को अपने अधीन कर लिया। फिर वह ज़ांग्स्कर में उत्पन्न विरोध से निपटने निकला। परन्तु लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया इसलिए उनके विरुद्ध कोई दण्डात्मक क़दम नहीं उठाया गया। मेहता बस्ती राम को ज़ांग्स्कर का थानेदार नियुक्त किया गया और उसके नियंत्रण में एक छोटी सेना को वहाँ ठहराया गया। इस प्रकार तमाम चीज़ों को ठीक-ठाक कर, वज़ीर जम्मू लौटा।

4

डोगरा शासन

जैसा कि पिछले अध्याय में उल्लेखित है, वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने महाराजा गुलाब सिंह के आदेश अनुसार लद्दाख और बाल्तीस्तान पर कब्ज़ा किया और 17 सितम्बर 1842 के शांति संधि के अनुसार इन क्षेत्रों को जम्मू राज्य में मिला लिया। परन्तु जब अंग्रेज़ी सरकार ने अमृतसर संधि के तहत 1846 में महाराजा गुलाब सिंह को कश्मीर सौंप दिया, तब लद्दाख जम्मू-कश्मीर राज्य का एक अंगभूत भाग बन गया और इस प्रकार सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ लोकतांत्रिक भारत का भी। अतीत पर नज़र डालें तो लद्दाख पर अधिकार कर उसे जम्मू-कश्मीर में मिलाने के लिए हमें ज़ोरावर सिंह का आभारी होना चाहिए। यह एक महान ऐतिहासिक घटना थी। यदि पूरे तिब्बत पर कब्ज़ा करने के अपने कठिन अभियान में ज़ोरावर सिंह को यह अधूरी सफलता भी न मिली होती तो आज हम लद्दाख में हर कहीं चीनी सैनिकों को घूमते, कश्मीर एवं जम्मू घाटी को घेरते और पूर्वी पंजाब के द्वार पर गरजते हुए पाते। यह लद्दाख के लोगों का सौभाग्य था कि उन्हें उस समय और सन् 1962 के भारत चीनी युद्ध के समय साम्यवादी आक्रमणों को झेलना नहीं पड़ा जो उनके धर्म और संस्कृति के लिए गंभीर ख़तरा साबित होता, जैसा कि तिब्बत में हुआ।

लद्दाख में डोगरों का लगभग एक शताब्दी से भी लंबा शासन हालाँकि सद्भावनापूर्ण था परन्तु कुल मिलाकर देखने पर प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा शोषण और दबाव से भरा हुआ था जिन्हें वर्ष के अधिकतर समय ऊँची पहाड़ियों के कारण राज्य के अन्य भागों से कटे हुए इस क्षेत्र में अच्छे उद्देश्य के साथ भेजा जाता था। डोगरा शासन के दौरान लोगों के धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं होता था और धार्मिक मामले पहले की तरह ल्हासा द्वारा ही निर्देशित किए जाते। लद्दाख के प्रथम थानेदार या प्रशासक मगना से आरंभ कर नव-अधिकृत लद्दाख क्षेत्र पर डोगरा शासन की प्रमुख विशेषताएँ आगे दी जा रही हैं।

मगना थानेदार

महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल के दौरान सन् 1842 में जब लद्दाख को जम्मू-कश्मीर में मिलाया गया, तब डोगरों ने एक प्रशासनिक अधिकारी द्वारा इस क्षेत्र को व्यवस्थित करने की ओर क़दम बढ़ाया। इस अधिकारी को थानेदार कहा जाने लगा। इस योजना के तहत पहला अधिकारी मगना थानेदार था। थानेदार के पास नागरिक और सैनिक दोनों शक्तियाँ होती थीं। इस थानेदार ने ज़ोरावर सिंह के दशक पुराने आक्रमणों से पीड़ित लोगों के पुनर्वास के लिए क़दम उठाए। लेह स्थित पुराने क़िले को इसी की देख रेख में बनाया गया। इसके अलावा लेह में एक भव्य इमारत का भी निर्माण कराया गया। मगना ने लेह के बाह्यांचल में बगीचे भी लगवाए जो इसी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मेहता बस्ती राम

मगना थानेदार के बाद सन् 1847 में मेहता बस्ती राम थानेदार बना। उसने लद्दाखी बौद्धों में प्रचलित बहुपति प्रथा से उत्पन्न परित्यक्त संतानों के पुनर्वास के लिए क़दम उठाए और उन्हें राज्य द्वारा स्थापित कुटीर उद्योगों में काम दिलाया। बकरी और भेड़ों के फ़ार्म भी उसने खुलवाए जिनसे राज्य की आमदनी में बढ़ोतरी हुई और बस्ती हवेली नामक इमारत भी खड़ी करवाई जिसका कुछ भाग सरकारी अनाज रखने और कुछ भाग कतिपय अधिकारियों के लिए निवास स्थान बना। लेह का वर्तमान बाज़ार भी उसी की देन है। इसके अलावा एक और इमारत का भी उसने निर्माण करवाया जिसके कुछ भाग को ज़िला अदालत एवं कोषागार और कुछ भाग को निम्न पद के अधिकारियों के लिए निवास स्थान बनाया गया।

मेहता मंगल

मेहता मंगल ने सन् 1860 में पद भार ग्रहण किया। वह सबसे प्रसिद्ध और श्रेष्ठ थानेदार था। अपने कल्याणकारी कार्यों और पुण्यवान सेवाओं के लिए उसका नाम आज भी लद्दाख के लोग याद करते हैं। उसके सबसे प्रमुख योगदानों में संपूर्ण नए ज़िले को व्यवस्थित करना और कर की वसूली के ढंग में सुधार करना था।

मगना थानेदार द्वारा निर्मित पुराने क़िले की मरम्मत कराकर उसे चारों ओर से मज़बूत दीवारों से घेरा गया और उसके बाहर सुरक्षा के लिए खाई भी खुदवाई गई। बेघर और भूमिहीन लोगों को उसने नए घर बनवाकर दिए, उन्हें कृषि के लिए बीज और उपकरण भी दिलवाए और भूमि कर से कुछ समय तक मुक्त रखा। नई बस्तियों में कृषि के लिए नहरों का भी निर्माण करवाया जिससे ज़िले में कृषि को अत्यावश्यक गति मिली और इससे आगे चलकर क्षेत्र की समृद्धि में सहयोग पहुँचा।

मेहता मंगल का सबसे स्मरणीय योगदान जिसके कारण कई पीढ़ियाँ उसकी आभारी रही वह यह थी कि जहाँ कहीं भी जल की सुविधा थी वहाँ उसने भिसे के पेड़ों के बाग और मार्गों के किनारे सरई के पेड़ लगवाए। अगर उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसके द्वारा दिखाए गए मार्ग का अनुसरण किया होता तो क्षेत्र में ईंधन और इमारती लकड़ी की आश्चर्यजनक कमी आज इस भयानक अनुपात तक नहीं पहुँची होती। उसने मुख्य मार्गों के किनारे विश्रामगृह और सराय भी बनवाए ताकि संपूर्ण ज़िले में यात्रा को सरल एवं आरामदेह बनाया जा सके। लेह के बाज़ार की चौड़ाई में इज़ाफा किया गया जो आज भी एक प्रभावी दृश्य प्रस्तुत करता है। 'रेस' नाम से उसने एक प्राचीन डाक सेवा भी शुरू कराई जिसके लिए संवाहकों की नियुक्ति की गई और इस प्रकार इस विस्तृत सुनसान क्षेत्र में जगह-जगह फैले लोगों को आवश्यक राहत पहुँचाने का काम किया। उसने लेह में एक संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना की और विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी देने की व्यवस्था की। हालाँकि उसका यह प्रयोग असफल रहा। व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित किया गया जिसमें अन्य वस्तुओं के साथ-साथ लद्दाख में उत्पादित नमक का निर्यात भी शामिल था। उसने लद्दाख और तिब्बत की सीमाएँ भी निर्धारित की।

वज़ीर शिवसारण

इस थानेदार ने सन् 1865 में पद ग्रहण किया और लगभग दो वर्ष तक काम किया। उसने वज़ीर बाग़ नाम से एक बग़ीचा लगवाया जहाँ आगे चलकर यारकंदी व्यापारियों के लिए विश्राम गृह बना। इसके अलावा चरस गोदाम, ईसाई गिरजाघर

और मोरेवियन मिशन का धर्मार्थ औषधालय भी बना।

सैयद अकबर अली

लद्दाख का अगला प्रशासक सैयद अकबर अली बना जिसने वज़ीर के पद पर सन् 1865 से सन् 1868 तक कार्यालय संभाला। यह वज़ीर पदनाम सन् 1947 में राज्य में हुए विद्रोह, निरंकुश डोगरा शासन से मुक्ति ओर लोकतंत्रिक भारत से विलयन होने तक ज़िले के सारे प्रशासकों के नाम से जुड़ा रहा। बाद में वज़ीर पदनाम को बदलकर अन्य राज्यों की तरह उपायुक्त किया गया।

ड्रूस और जॉन्सन

सैय्यद अकबर अली के बाद फ्रेड्रिक ड्रू और जॉन्सन नामक दो अंग्रेज़ों ने महाराजा रणबीर सिंह (1857-85 ईस्वी) के शासनकाल में एक के बाद दूसरे ने यह पद संभाला। पिछले प्रशासकों ने महाराजा गुलाब सिंह की सरकार का प्रतिनिधित्व किया था, जिसने राज्य में डोगरा शासन की स्थापना की थी। ड्रू एक विद्वान था और उसने 'जम्मू एंड कश्मीर टेरीटॅरिज़' नामक एक ज्ञानप्रद पुस्तक लिखी जिसमें लद्दाख की भी चर्चा की गई है। उसने अप्रयुक्त भूमि पर बसने वालों को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें भारी छूट दिए। नामी मध्य एशियाई अन्वेषक जॉन्सन प्रसिद्ध रेशम मार्ग (सिल्क रूट) पर पड़ने वाले क्षेत्र खोतान जाने वाला आधुनिक समय का पहला यूरोपीय व्यक्ति था। वह 'सर्वे ऑफ़ इंडिया' और राज्य सेवा से जुड़ा और आगे चलकर उसका तबादला लद्दाख में हो गया। क्रॉनिकल में हालाँकि इसे कॉरपोरल की संज्ञा दी गई है परन्तु वह सचमुच कॉरपोरल था या नहीं, यह निश्चित नहीं है। उसने ऊलेटोकपो की समतल भूमि और स्पीतुक के पास की ख़ाली भूमि को सींचने के लिए नहर बनवाए और विभिन्न स्थानों पर बगीचे लगवाए। बाल्तीस्तान से लेह व्यापारिक उद्देश्य से आने वाले यात्रियों के लिए उसने एक विश्राम गृह भी बनवाया। मेहता मंगल द्वारा आरंभ भूमि व्यवस्थापन प्रणाली को उसने बेहतर बनवाया। इसके अलावा अन्य कई सुधार कार्य भी उसके द्वारा किए गए जिनसे कुल मिलाकर ज़िले की आमदनी में बढ़ोतरी हुई और उसके सामान्य प्रश. ासन में भी सुधार हुआ। सौम्य एवं सार्वजनीन प्रकृति के कारण जॉन्सन और उसका

प्रशासन काफ़ी लोकप्रिय हुआ।

जॉन्सन के उत्तराधिकारी

जॉन्सन के उत्तराधिकारियों में अपने योगदानों के लिए विशेष रूप से उल्लेख्य है राधा कृष्ण कौल (1882-1886 ईस्वी) और चंद्री खुशी मोहम्मद (1902-1905 ईस्वी) जिसने व्यवस्थापक अधिकारी के तौर पर कार्य किया और राज्य के व्यवस्थापक आयुक्त तालबोट के निरीक्षण में लद्दाख और ज़ांग्स्कर की व्यवस्था का संशोधन एवं समापन किया। कौल द्वारा की गई इस व्यवस्था से किसानों को संतुष्टि नहीं मिली क्योंकि भूमि की उत्पादक क्षमता को देखते हुए उन्हें यह व्यवस्था कठोर लगी।

लद्दाख में डोगरा शासन के प्रारम्भिक काल में, बाल्तीस्तान में भी सैन्य अधिकारियों का राज था। परन्तु सन् 1851 में केदारू थानेदार के बाल्तीस्तान का प्रधान नियुक्त होने के बाद इसे नागरिक रूप मिल गया। उस समय जहाँ लद्दाख में एक भिन्न राजनीतिक ढाँचा विद्यमान था वहीं कारगिल और स्कर्दू एक बिल्कुल अलग राजनीतिक इकाई बन गए थे। महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में लद्दाख और गिलगिट को एक ही प्रशासनिक इकाई में मिला दिया गया जिसे सरहदी वज़ारत (फ्रांटियर वज़ारत) कहा जाता था। पुरीग के क्षेत्र को भी उसी समय एक अलग तहसील कारगिल में संगठित किया गया। परन्तु बाद में जब लद्दाख और गिलगिट को प्रशासनिक तौर पर अलग किया गया, स्कर्दू और कारगिल तहसील बाल्तीस्तान ज़िले के ही भाग बने रहे। इसके बाद, पूरा लद्दाख और बाल्तीस्तान एक ही ज़िले के तौर पर एक ही वज़ीर के नियंत्रण में आ गए। इस ज़िले के ग्रीष्म और शीत केन्द्र क्रमशः लेह और स्कर्दू में थे। यह अनुबंध तब तक चला जब सन् 1947 में पाकिस्तान ने राज्य पर धावा बोलकर उसके कुछ भाग को हथिया लिया, बावजूद इसके कि महाराजा हरि सिंह ने 27, अक्टूबर 1947 को राज्य का भारत से विलयन किया था।

राज्य के साथ पूर्ण विलयन हो जाने के बाद भी, बाल्तीस्तान के स्थानीय राजा डोगरा अधिकारियों के निरीक्षण एवं नियंत्रण में पहले की तरह अपने अधिकारों

को चलाते रहे। परन्तु ज़िले के प्रथम कार्यकारी अधिकारी केदारू थानेदार द्वारा इन्हें इनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया। केदारू थानेदार ने नागरिक प्रशासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली और स्थानीय राजाओं को केवल नामधरी शासकों का दर्जा ही दिया।

केदारू थानेदार के बाद किश्तवाड़ का वज़ीर लबाजू बाल्तीस्तान के करदार के तौर पर सन् 1863 में आया। उसने नाला सतपरा पर स्वयं के लिए एक भव्य इमारत का निर्माण कराया जिसे आगे चलकर अनेक नागरिक कार्यों के लिए इस्तेमाल किया गया। इसका उत्तराधिकारी मेहता मंगल बना जिसका सन् 1875 से लेकर सन् 1885 तक का दस साल का शासन लद्दाख के थानेदार के पद पर उसके कार्यकाल की तरह की स्मरणीय रहा जैसा कि पीछे उल्लेखित है। अपनी परिणाम-केन्द्रित नीतियों के बल पर उसने कृषि उत्पादन में बहुत बढ़ोतरी कराई, सरकारी आय में भी काफ़ी उन्नति हुई, सरकारी कर्मचारियों की सुख-सुविधा को भी बढ़ाने में योगदान दिया और स्थानीय लोगों की समृद्धि को बढ़ाने में भी, जिसके लिए उसका कृतज्ञता और सम्मान के साथ स्मरण किया जाता रहा।

लद्दाख की तरह, उसने बाल्तीस्तान में भी एक छोर से दूसरे छोर तक सरई और भिसे के पेड़ लगवाए। उसने इस ज़िले की जलवायु और अन्य क्षेत्रों की तुलना में नीची भूमि को देखते हुए यहाँ फलों के पेड़ भी लगवाए जिसके लिए यहाँ की परिस्थिति अनुकूल थी। बाल्तीस्तान को उसके सर्वोत्तम योगदानों में सबसे प्रमुख उसके भवन निर्माण की योजनाएँ थी। ऐसी इमारतों में से सबसे उल्लेखनीय है स्कर्दू में निर्मित इमारतों का एक समूह जिसका नाम रणबीरगढ़ था और जो उसका निवास स्थान और प्रमुख कार्यालय होने के साथ-साथ सारे सरकारी कर्मचारियों को आवास प्रदान करने के लिए काफ़ी था। स्कर्दू में उसने अन्य इमारत भी बनवाए जिनमें सैन्य कर्मचारियों के लिए छावनी, एक बंदीगृह, सरकारी कर्मचारियों के लिए आवास गृह और एक ख़रीदारी केन्द्र भी बनवाया। उसने कई स्थानों पर रेशम के कीड़े से जुड़ी योजनाएँ प्रारम्भ कीं और लद्दाख की तरह, ज़िले के सारे राजमार्गों पर सराय और विश्राम गृह का निर्माण कराया। मोटे तौर पर लोकहित के लिए

उसकी चिंता और गहरी सद्भावना ने उसे अकल्पनीय ढंग से लोगों के दिलों से जोड़ दिया। लद्दाख और बाल्तीस्तान के इस अद्वितीय हितकारी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए अत्यधिक मूल्यवान नागरिक कार्य चिरस्थायी इमारतों की तरह आज भी खड़े हैं।

उदासीन रवैया

महाराजा रणबीर सिंह का शासनकाल लद्दाख और बाल्तीस्तान के लिए एक स्मरणीय काल था। वह एक बुद्धिमान और दूरदर्शी शासक था जिसे इस दूरस्थ क्षेत्र के लोगों के कल्याण को लेकर चिंता थी। अपने उच्च योग्यता प्राप्त और निष्ठावान प्रशासकों द्वारा उसने व्यावहारकुशलता के साथ धीरे-धीरे जो बदलाव कराए उन्हें लोगों ने उत्साह के साथ स्वीकार किया। स्थानीय प्रशासकों के सद्भावनापूर्ण व्यवहार से लोगों को इस नई राजनीतिक व्यवस्था से सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिली और अंततः अपने ऊपर शासन करने वाले डोगरों के पक्के समर्थक बनने में भी। लेकिन समय बीतने के साथ-साथ ज़िले में सहनीय अैर अच्छे प्रशासन के चिह्न नहीं रहे और न ही पहले की तरह श्रीनगर के सत्ताधारियों में लद्दाख के प्रति चिंता ही शेष रही। इसलिए ज़िले को उसकी स्थायी उदासीन दशा के चलते एक बाधा, एक बोझ और राज्य के राजकोष के लिए व्यर्थ निष्कासन की एक वस्तु समझा जाने लगा।

लद्दाख और बाल्तीस्तान के लिए महाराजा रणबीर सिंह का शासनकाल अच्छा और सहानुभूतिपूर्ण था। यहाँ तक कि लोगों ने अपने हित के प्रति नए प्रशासकों की स्पष्ट चिंता को देखते हुए इस बदली हुई राजनीतिक व्यवस्था और अपनी थोपी गई दासता के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया था। अपने प्रति दिखाए जा रहे दयापूर्ण एवं सहायक व्यवहार के चलते लोगों को अपनी दासता और अपने आसपास हो रहे आकस्मिक परिवर्तनों के झटकों को नहीं झेलना पड़ा और समय बीतने के साथ वे डोगरा शासकों के स्वामीभक्त और पक्के समर्थक बन गए परन्तु ज़िले की उन्नति को जो प्राथमिकता पहले दी जाती थी वह अब नज़र नहीं आती थी।

डोगरा शासन के अंतिम दो शासकों महाराजा प्रताप सिंह और महाराजा हरि सिंह को हालाँकि पिछड़े हुए लद्दाख क्षेत्र की उन्नति एवं कल्याण की सच्ची चिंता थी, परन्तु अनेक कारणों से उनका लद्दाख के प्रशासन में व्यक्तिगत तौर पर ध्यान दे पाना कठिन था। इन कारणों में प्रमुख था इस क्षेत्र की दुर्गमता और उसका वर्ष के अधिकतर समय में बर्फ़ से ढका हुआ रहना। जिन मंत्रियों का काम इस क्षेत्र के मामलों में रुचि दिखाना था, वे इस दूरवर्ती ज़िले पर नज़र पड़ते ही, अपनी आँखें मूंद लिया करते थे। लद्दाख के लिए वज़ीरों की नियुक्ति इतनी असंतोषजनक थी कि यह क्षेत्र अपराधियों और दण्डित अधिकारियों का निवास स्थान बन गया था। लोगों में भी अपने दुख पर कराहने या अपने ऊपर हो रहे शोषण के विरुद्ध श्रीनगर स्थित सरकार से विद्रोह करने की इच्छा मर चुकी थी और उन्होंने वस्तुतः इस कठोर उत्पीड़न और शोषण के आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

तानाशाही

वज़ीर और उसके मित्रों, जैसे तहसीलदार और कुछ कम हद तक नायब तहसीलदार द्वारा जिन अधिकारों का उपभोग किया जाता, वे इतने अजीब थे कि उनपर विश्वास करना कठिन है। इनमें से हर एक अधिकारी अपने पद के अनुसार अभियोजकी, दण्डनायकी और न्यायिक अधिकारों से लैस होता था। वज़ीर चूँकि ज़िले का प्रधान था इसलिए वह पुलिस अधीक्षक भी था, ज़िला दण्डाधिकारी भी और ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश भी। इसी प्रकार, तहसीलदार के हाथों में पुलिस निरीक्षक और उप-न्यायाधीश के अधिकार थे और नायब तहसीलदार उप-निरीक्षक और मुंसिफ़ के अधिकार लिए हुए होता था। इन अधिकारियों द्वारा भोगे गए अधिकारों और इनके दुरुपयोग का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि छोटी सी ग़लती को लेकर सरकार के ये विश्वासपात्र प्रदेशासक सरल, सहनशील लद्दाखियों को पैसे-पैसे के लिए मोहताज कर देते थे। निसंदेह, उच्चाधिकारी अपने द्वारा बिछाए जालों में बड़े शिकारों को हर हथकंडा अपनाकर फाँसने में व्यस्त रहते।

ज़िले के पिछड़े क्षेत्र जैसे ज़ांग्स्कर और स्कर्दू तो विशेष रूप से अधिकारियों के मनमाने व्यवहार और शोषण के शिकार होते थे हालाँकि अन्य सुलभ क्षेत्र भी पूरी

तरह सुरक्षित नहीं थे। उपयोगी डाक एवं तार संचार की कमी और विषम जलवायु के कारण वर्ष के अधिकतर भाग ज़ांग्स्कर दुनिया से कटा रहता था जिससे यहाँ के भोले-भाले लोगों का अधिक शोषण हुआ। अगर ज़ांग्स्कर के बौद्धों में लद्दाख के अन्य क्षेत्रों की तरह बहुपति-प्रथा के द्वारा परिवार नियोजन एक अलंघ्य प्रथा नहीं होती और यदि वे अविश्वसनीय ढंग से अप्रजायी नहीं होते तो युगों से ऐसी परिस्थितियों में उनका जीवित रह पाना संभव नहीं होता। उनकी आश्चर्यजनक अप्रजायिता का एक कारण छांग या स्थानीय शराब की अत्यधिक खपत हो सकती है।

शोषण

स्थानीय एवं अन्य अधिकारियों के द्वारा ज़ांग्स्कर के सरल लोगों का शोषण करने की कार्य प्रणाली अति सरल परन्तु घातक परिणाम लिए होती थी। एक निम्न पद के अधिकारी द्वारा किए गए शोषण के एक छोटे से उदाहरण से पता चलता है कि बड़े अधिकारी किस कदर इन दूषित कार्यों में आसक्त थे। यदि किसी मामूली अधिकारी के द्वारा दी गई धमकी का उसको इच्छानुसार फल नहीं मिलता तो वह कारगिल स्थित तहसीलदार के पास उस व्यक्ति के विरुद्ध व्यक्तिगत प्रहार जैसी कोई झूठी रपट लिखवाता और तहसीलदार तथाकथित दोषी को 150 मील की यात्रा करके उसके सामने कारगिल में हाज़िर होने के आदेश जारी करता। आरोपी के पास आदेश मानने के अलावा और कोई रास्ता नहीं होता और उसे कारगिल के अधिकारियों को घूस देकर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, हर स्तर पर क्षत-विक्षत होकर लौटना पड़ता। इसलिए ये लाचार लोग कारगिल की अकथनीय यंत्रणा की तुलना में ज़ांग्स्कर में ही रहकर निष्ठुर और निर्दय धमकियों को झेला करते थे। सरकारी गुंडो में सबसे कुख्यात वर्ग था रक्षानीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर तैनात कुठ पहरेदार। इन पहरेदारों को कुठ(Kuth)[16], जोकि एक निषिद्ध माल था, की तस्करी को रोकने के लिए तैनात किया गया था। ये अधिकारी निर्दोष पथिकों को तलाशी के बहाने अकल्पनीय कष्ट और धमकियाँ देते और माँगी गई फिरौती न देने पर उन्हें बंदी बना लेते। उनकी कार्य प्रणाली पर एक उदाहरण के द्वारा प्रकाश

डाला जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति निजी इस्तेमाल के लिए मिट्टी के तेल का एक बंद कनस्तर उठाए कारगिल से ज़ांग्स्कर जा रहा हो, तो पहरेदार उसे कनस्तर का मुहर खोलकर दिखाने के लिए कहता कि कहीं वह उसमें कुठ छुपाकर तो नहीं ले जा रहा। आटे की बोरी होती तो वह इसी प्रकार के निरीक्षण के लिए सारा आटा ज़मीन पर गिराने की धमकी देता। संक्षेप में, इन चौकियों को सुरक्षित पार करने के लिए हर यात्री को रिश्वत देना पड़ता, चाहे वह आदमी हो, औरत हो, या पूज्य लामा ही क्यों न हो। भ्रष्ट प्रशासन के सबसे निचले दर्जे पर हो रहे भयादोहन का यह एक उदाहरण है। ज़िला प्रशासन के उच्चाधिकारियों के विभिन्न सौदों में हिस्से होते फिर चाहे वे सौदें उनकी अनुमति से या अनुमति के बिना हुए हों। जब ये अधिकारी ज़ांग्स्कर जाते, तब वहाँ के लोगों में आतंक फैल जाता और वे किसी प्रकार अपने आप को पूर्ण विनाश से बचाने के रास्ते खोजने की चिंता में डूब जाते। ज़ांग्स्कर के प्रसिद्ध घोड़ों के मालिक अपने पशुओं को वज़ीर को बलपूर्वक भेंट में देने से बचने के लिए न चाहते हुए भी उन्हें दूरस्थ स्थानों में भेज देते। इन ग़रीब लोगों का शोषण यहीं समाप्त नहीं होता था। इन लोगों के भीतर एक गहरा विश्वास बैठ गया था कि दौरे पर आते इन अधिकारियों का रख-रखाव उनका वैध एवं अनिवार्य कर्तव्य था। इन भ्रमणशील अधिकारियों के इस्तेमाल के लिए उन्हें अपने टट्टू देने पड़ते और इसके बदले में उन्हें मारा-पीटा जाता और गालियाँ दी जातीं।

ज़ांग्स्कर के लोगों की अविश्वसनीय अज्ञानता और सामान्य प्रशासन की अयोग्यता से इन लोगों के शोषण को बढ़ावा मिला। डोगरा शासन के समय इस क्षेत्र में सरकारी गुंडागिरी के बहुत सारे मामले थे, परन्तु लद्दाख और विशेष रूप से ज़ांग्स्कर की इन गतिविधियों का पता न महाराजाओं को था और न श्रीनगर में कार्यरत उनके मंत्रियों को। उस समय के प्रचलित परिस्थितियों में वज़ीरों में कोई वज़ीर अपवाद के तौर पर नज़र नहीं आता परन्तु ऐसे कुछ उल्लेखनीय तहसीलदार अपवादस्वरूप आए जिनमें सबसे प्रमुख था अर्जुन नाथ सप्रु जो अपने कर्तव्य के हर पहलू में और उच्च न्यायनिष्ठा के बल पर अन्य से अलग था। दूसरा विशिष्ट अधिकारी था शिक्षा अधिकारी श्रीधर कौल। कौल ने वस्तुतः लद्दाख को शीक्षित किया, लोगों को उनकी लंबी नींद से जगाया, उन्हें उनके नागरिक अधिकारों के बारे

में सजग किया और अधिकारियों को अवैध भेंट देने के विरुद्ध चेताया जो वास्तव में उनके सेवक थे, स्वामी नहीं। ज़िले के प्रति उसकी सेवाओं के लिए आज भी लद्दाख के लोग उसे कृतज्ञता और प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं।

लोक शासन

ज़ांग्स्कर के लोगों की व्यथा का न तो डोगरा शासन के समापन के साथ अंत हुआ और न ही सन् 1947 में राज्य में लोक शासन की स्थापना के साथ। सन् 1947 में पाकिस्तानी गिरोहों द्वारा लद्दाख और विशेष रूप से ज़ांग्स्कर में जो तबाही मचाई गई, उसका इतिहास साक्षी है। इन गिरोहों ने बड़ी निष्ठुरता से लूट मचाई, निर्दोष लोगों पर गोलियाँ बरसाईं, बलात्कार किए, डाके डाले। इन लोगों ने पूज्य लामाओं और पवित्र मठों के आहतों तक को नहीं छोड़ा। पाकिस्तानी सेना के ज़ांग्स्कर से खदेड़े जाने के बाद एक अभूतपूर्व अकाल ने क्षेत्र को जकड़ लिया। खाद्य की स्थिति इतनी ख़राब हुई कि लोगों के द्वारा घास तक खाए जाने के क़िस्से मिले जो अविश्वसनीय होकर भी सच माने जाते हैं। जब इन लोगों की शोचनीय दशा का खुलासा प्रेस द्वारा किया गया तब भारत के उस समय के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की नज़र इस क्षेत्र पर पड़ी जिन्होंने ज़ांग्स्कर के पीड़ित लोगों के दुःखों के निदान के लिए 10,000 रुपये भेजे। यह धन जो ज़ांग्स्कर के पीड़ितों में बाँटा जाना था, जोकि बौद्ध थे, कारगिल तो पहुँचा लेकिन असली पीड़ितों के स्थान पर अन्य लोगों में बँट गया।

एक और समस्या भी है जिसने ज़ांग्स्कर के लोगों के कष्टों को बढ़ाया है और जिसका तुरंत समाधान अत्यावश्यक हो गया है। ज़ांग्स्कर का रङ्दुम क्षेत्र हरे भरे चारागाहों से भरा है जो इन लोगों के जीवन निर्वाह के प्रमुख स्रोत है यानी उनके मवेशियों का पेट पालता है। पिछले कई सालों से, जम्मू क्षेत्र के शस्त्रधारी चरवाहे अपने मवेशियों को हज़ारों की तादाद में इन चारागाहों में चराने के लिए लाते रहे हैं। इस घुसपैठ के चलते स्थानीय मवेशियों को चारा नहीं मिल पाता जिससे उनकी संख्या में कमी आई है और लोगों को भी गंभीर आर्थिक कठिनाई झेलनी पड़ रही हैं। हालाँकि ज़िला अधिकारियों और राज्य सरकार को इस

दुर्भाग्यपूर्ण गतिविधि की जानकारी है, परन्तु वे इन लाचार लोगों के विलाप को अनसुना करना ही अधिक सुविधाजनक पाते हैं। निरंकुश डोगरा शासन के काल में इन लोगों की व्यथा स्वाभाविक लगती है परन्तु एक मुक्त एवं लोकतंत्रिक व्यवस्था के भीतर भी इनके शोषण का जारी रहना सचमुच आश्चर्यजनक और गर्हणीय है।

5

लोग

लेह ज़िला, जिसकी जनसंख्या में अधिकांशतः बौद्ध हैं, के तीन पृथक भौगोलिक क्षेत्र हैं जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है। ये तीन क्षेत्र हैं– चङ्थङ्, जिसका केन्द्र न्योमा है, नूबरा घाटी जिसका केन्द्र दिस्कित है और शम एवं स्तोद जिनका केन्द्र लेह में स्थित है। लद्दाख के दूसरे ज़िले कारगिल में अधिकतर लोग मुसलमान हैं जबकि उसके ज़ांग्स्कर प्रतिभाग को प्रमुखतः बौद्ध क्षेत्र होने के बावजूद राजनैतिक कारणों से कारगिल के साथ मिलाया गया है।

लद्दाख का जनसांख्यिकीय ढाँचा 'अनेक जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों को सँजोए हुए है। यहाँ बहुभाषाभाषी आबादी है जिसकी अपनी एक विशिष्ट पहचान है, जोकि दूसरी संस्कृतियों से जुड़कर एक वर्णनातीत मनोहरता और लय से भरी स्व. रसंगति बन जाती हैं।' जनसंख्या का जो बौद्ध अंश है उसमें कई सारी प्रजातियाँ मिली हुई हैं। इनमें सबसे पहले यहाँ बसने वाले गिलगिट क्षेत्र के दरदिस्तान के उत्प्रवासी दरद लोग थे जो शताब्दियों पहले यहाँ आए। इसके बाद कुल्लू से आर्य जाति के मोन आए। अप्रवासियों की अंतिम लहर तिब्बत की तरफ़ से आई जिससे इस भूमि की जातीय पच्चीकारी में मंगोली लड़ी भी जुड़ गई। पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले कश्मीर में स्थित स्कर्दू के अभिजात परिवार खुद को महान ग्रीक यौद्धा सिकन्दर के वारिस मानते हैं। उनका विश्वास है कि सिकन्दर की सेना उनके क्षेत्र से होकर ही भारत के समतल क्षेत्रों की ओर बढ़ी थी। जिस लद्दाख को हम जानते हैं, वह कुछ समय पहले तक मध्य-एशियाई व्यापार का केन्द्र बिन्दु था जब अनेक चीनी तुर्किस्तान के परिवार यहाँ आकर बस गए, मुख्यतः शहरों में। आगे चलकर इनका रक्त प्रारंभिक अधिवासियों के रक्त से मिल गया। इन भिन्न जातीय तत्त्वों के सम्मिश्रण से बने लद्दाख के जनसांख्यिकीय चित्र को इसलिए कुछ प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें से बौद्ध समुदाय की बोटो प्रजाति

सबसे बड़ी है।

बोटो

विस्तृत वर्गीकरण के तहत, बोटो प्रजाति के अधिकतर वर्ग मंगोल प्रजाति के हैं और हालाँकि इनमें से अधिकांश लोग बौद्ध है, कुछ शिया और ईसाई भी हैं, जो मूलतः बौद्ध थे। प्रथम ईसाई मिशनरी *विल्हेल्म हेज* ने इन लोगों की ''छोटी पतली आँखें, उभरे हुए गाल, नरम चिकने बाल और गेहुए रंग'' को बिल्कुल मंगोली माना है।[25] हालाँकि शिया और ईसाई आज भी अपने बौद्ध पूर्वजों के कुछ रिवाजों एवं रीतियों को मानते हैं। *कनिंघम* द्वारा दिए गए बौद्ध लोगों की आँख-नाक का विवरण बेहद किताबी है जिसकी अनदेखी करना कठिन है। उनके तीक्ष्ण अवलोकन के अनुसार उनके चेहरे 'चौड़े, चपटे और चौकोर होते हैं और उनकी ऊपरी पलक का एक विचित्र और कोणीय आकार होता है जो विशेष रूप से असुंदर दिखता है। आँखें लगभग सबकी काली ही होती हैं परन्तु भूरी और यहाँ तक कि कभी-कभी नीली आँखें भी देखने में आती है। उभरे हुए गालों की हड्डियों पर त्वचा के खिंचाव के कारण आँखों के भीतरी कोने नीचे की ओर खींचे हुए होते हैं, इसलिए पलकें यूरोपियों की तरह मुँह के समानांतर न होकर धारहीन कोण वाली होती है। यह आँखों को एक तिरछेपन का आभास देता है जो बहुत अजीब सा लगता है। कान खूब बड़े और मोटे होते हैं। कानों की लौ भी यूरोपियों के कानों की तुलना में काफ़ी बड़ी होती है। मुँह बड़ा और होठ उभरे और भरे हुए होते हैं।'[26] निम्न वर्ग के लोग सामान्यतः छोटे कद के, मोटे और हृष्ट-पुष्ट, चौड़े चेहरों वाले होते हैं जबकि उच्च वर्ग के पुरुष अच्छी बनावट, सुंदर नैन-नक्श वाले होते हैं और महिलाएँ लाल-लाल गालों वाली, स्त्री-सौन्दर्य का आदर्श कहलाने योग्य होती हैं।

लद्दाखियों की आयु सामान्यतः लंबी होती है। जहाँ *कनिंघम* अनेक शतवर्षियों से मिले, जिनमें सटकी गाँव की एक भिक्षुणी भी थी, जिसकी आयु 110 वर्ष थी, वहीं *श्लागेन्टवाइट* का हेमिस के एक 103 वर्षीय भिक्षु से साक्षात्कार हुआ।

---

[25] Heinrich Harrer, Ladakh.

[26] A. Cunningham, Ladakh.

कनिंघम द्वारा दिए गए आँकड़ों और सन् 1971 के जनगणना से परिपुष्ट आँकड़ों के अंतर्गत पिछले एक शताब्दी से भी अधिक समय के दौरान लद्दाख की जनसंख्या लगभग स्थिर ही रही है। इसके अनेक कारणों में बहुपति प्रथा, अल्पकालिक विवाह एवं अनेक पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा मठवादी जीवन में प्रवेश करना आदि आते हैं। बहुपति प्रथा के द्वारा परिवार की सम्पत्ति को अखंड रखा जाता था।

बोटो प्रजाति की बौद्ध जनता, भगवान बुद्ध, बोधिसत्त्वों एवं प्रसिद्ध बौद्ध गुरुओं की पूजा करते हैं। वे पवित्र पहाड़ियों, चश्मों, ग्रामीन देवताओं (युल-ल्हा) घर के देवताओं (खिम-ल्हा), जल, अग्नि और साकिन सरीखे कुछ वन्य पशु आदि की भी उपासना करते हैं। उनकी सांस्कृतिक सजावटों में सूर्य, चन्द्र एवं अन्य अंतरिक्षी वस्तुओं को चित्रित किया जाता है और उनके लोक गीतों के आरंभ में सूर्य, चंद्र का उल्लेख होता है। पहनावे, आभूषण और नृत्यों में सर्प पूजा की भी झलक मिलती है। कुछ समय पहले तक बोटो लोगों में पशु-बलि कुछ हद तक सामान्य थी हालाँकि इन्हें प्राचीन समय में मानव बलि से भी जोड़ा जाता है। परन्तु ये विश्वास एवं प्रथाएँ बुद्ध के शिक्षण से मेल नहीं खातीं और न ही किसी बौद्ध ग्रंथ में इस तरह की किसी बात का उल्लेख मिलता है। दूसरी तरफ़, ऐसा लगता है कि लद्दाखी समाज की गांधीजी के आदर्श-राज से काफ़ी समानता है, वह आदर्श जो वे मानते थे कि केवल प्राचीन भारत के ग्रामों में ही पाया जाता है। गांधीजी के अनुसार इन आदर्श ग्रामों में नियम और प्रतिबंध न्यूनतम थे और निर्णय प्रायः लोकतंत्रिक प्रकृति के होते थे। उस तंत्र में अपराध के लिए कोई स्थान नहीं होता था और न ही जाति, धर्म और लिंग के स्तर पर कोई भेद-भाव ही होता था। वह पुरुष शासित समाज नहीं था क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनों जातियों की समाज में अपनी-अपनी भूमिका थी जिनका अपना-अपना महत्त्व होता था और एक की कीमत पर दूसरे का लाभ संभव नहीं होता था। परन्तु यह स्थिति प्राकृतिक ढंग से धीरे-धीरे बदल रही है।

बोटोओं में सात जनजातियाँ हैं, यद्यपि हैं सब एक ही प्रजाति की। ये सारी जनजातियाँ एक ही भाषा बोलती हैं जिसे सामान्य तौर पर लद्दाखी कहा जाता है और जिसे बौद्ध जनता बोधी कहना पसंद करती है। परन्तु स्थानीय स्तर पर कुछ

शब्दों और उच्चारण के तरीक़ों में भिन्नताएँ हैं। केन्द्रीय लेह के बोटो दूसरे वर्गों से तुलना में अधिक उन्नत, सुस्पष्ट और राजनीतिक स्तर पर सजग हैं और ये बौद्ध जनसंख्या के केन्द्रबिन्दु हैं। शिक्षित वर्ग का अधिकांश भाग इसी समूह से है। बोटोओं के सातों वर्गों का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

चङ्पा

तिब्बती चलवासी, जिन्हें चङ्पा कहा जाता है, चङ्थङ् के विस्तृत पठारों में बसे हुए हैं, इसका कुछ भाग तिब्बत के अंदर है और कुछ कश्मीर राज्य के। इस पठार पर कश्मीर और तिब्बत की सीमाएँ आपस में मिलती हैं। इसीलिए यह क्षेत्र रक्षानीति की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण है। 13,000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित इस पठार पर घास के अलावा पेड़ एवं अन्य वनस्पतियों का उगना कठिन होता है। इस विस्तृत घास भरे पठार में, चङ्पा अपने भेड़ बकरियों और याक के झुण्डों को पालते हैं जिनकी रक्षा तगड़े मेस्टिफ़ कुत्तों द्वारा कराई जाती है। यहाँ की स्थानीय बकरी पश्मीना ऊन वाली होती है जोकि इस उदास बीहड़ क्षेत्र की प्रमुख सम्पत्ति है। यहाँ के लोग तंब.ुओं में रहते हैं और अपने मवेशियों को दुहाते, दूध से मक्खन निकालते, याक और बकरी के बाल से रस्सियाँ और दरी बनाते हैं या फिर अपनी मालाओं को जपते हुए अपना समय बिताते हैं। एक नियमित समय के अनुसार गर्मियों की मेघहीन और झुलसा देने वाली धूप और सर्दियों की कड़कती ठंड को झेलते हुए ये लोग एक चरागाह से दूसरे चरागाह की यात्रा करते रहते हैं। मौसम की विषमता से बचाव का उनका अकेला आश्रय उनके तंबू हैं। जो चङ्पा ऊँचे क्षेत्र में रहने का आदी है, उसे लेह की गर्मी में घुटन महसूस होने लगेगी और मुमकिन है कि वह लेह की असह्य गर्मी की तुलना में अपने क्षेत्र के उत्तरध्रुवीय तापमान को अधिक पसंद करे। परन्तु उनके मवेशियों के लिए सर्दी या गर्मी, किसी भी मौसम में कोई आश्रय नहीं होता। जब निचले क्षेत्रों में जौ की फ़सल पक जाती है, तब कुछ चङ्पा अपने मवेशियों के साथ याक पर मक्खन और झीलों से एकत्रित नमक लादे इन निचले क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करते हैं जहाँ पहुँचकर वे इन वस्तुओं का अनाज के साथ विनिमय करते हैं। याक और अन्य मवेशियों के गोबर को वे जलावन के तौर पर इस्तेमाल करते हैं, जैसा कि लेह के अन्य भागों में भी किया जाता है। उनके बहुमूल्य शाल ऊन के

लिए लेह एवं कुल्लू दोनों तरफ़ से अगस्त के आसपास ग्राहक आते हैं।

इन पिछड़े लोगों के कठिन जीवन को अच्छी योजनाओं के द्वारा उर्वर और सुखी बनाने की आवश्यकता है। इनके लिए चल-विद्यालयों एवं सेवाभावना से परिपूर्ण शिक्षकों का प्रबंध किया जाना चाहिए। ये लोग अपनी बलवान देह और खुले मन के साथ कठोर एवं उदास जीवन व्यतीत करते, सभ्य प्रभावों से कटे हुए एकान्तवास में जी रहे हैं और हमें मानव जाति के शैशवकाल की याद दिलाते हैं।

रोङ्पा

ये लोग सिंध नदी के पास, लेह के पूर्व में न्योमा और शारा-इगू के बीच के क्षेत्र में बसे हुए है और चङ्पाओं से कम पिछड़े हैं। इनके क्षेत्र की कम ऊँचाई कृषि के लिए उपयुक्त है हालाँकि इनका व्यवसाय मवेशी प्रजनन है। चङ्पाओ की तुलना में रोङ्पा अधिक शिक्षित और खुले हैं परन्तु इनकी उन्नति के लिए भी अभी बहुत कुछ किया जा सकता है।

स्तोदपा

इस वर्ग के लोग शारा-इगू से तारु-उमला तक के क्षेत्र में बसे हुए हैं, जिसमें लेह भी शामिल है। इनकी प्रमुख जीविका कृषि है जिसके अंतर्गत गेहूँ, मटर और सब्जियाँ भी उगाई जाती हैं। स्तोदपाओं की अधिकतर जनसंख्या बौद्ध है परन्तु कुछ शिया मुस्लिम और ईसाई भी कुछ हजार की संख्या में हैं जो मूलतः बौद्ध थे, जैसा कि पहले भी उल्लेख हो चुका है। इस क्षेत्र में कश्मीर घाटी और मध्य एशिया से आए अरगोन भी बसे हुए हैं, जिनका व्यवसाय वाणिज्य-व्यापार है, परन्तु जनसंख्या के इस वर्ग को बोटो जनजाति में नहीं गिना जाता।

शम्मा

शम्मा तारु-उमला से लेकर अचीनाथङ् के बीच के क्षेत्र में बसे हुए हैं। ये बोटो जनजाति के हैं और स्तोदपाओं के समान प्रजाति के हैं। इनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत कृषि एवं खुबानी उत्पादन है। कुछ शम्मा कंजी, लिङ्शेद और फ़ोतोक्सा

जैसे ऊँचे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ वे मवेशियाँ पालते हैं और मौसम अनुकूल हो तो जौ उगाते हैं।

नूबरापा

ये लोग लेह के उत्तर स्थित प्रसिद्ध नूबरा घाटी के निवासी हैं जो उत्तर-पूर्व में चीन और तिब्बत की सीमाओं को और उत्तर-दक्षिण में पाकिस्तान के कब्ज़े वाले कश्मीर को छूती है। प्रसिद्ध खरदोङ् दर्रा इस घाटी को लेह से अलग करता है। विश्व की सबसे ऊँची सड़क इसी दर्रे से होकर जाती है। नूबरा के अधिकतर लोग बोटो प्रजाति के बौद्ध हैं और कृषि उनकी प्रमुख जीविका है।

मोन

मोन कुल्लू से आए थे। वे बौद्ध धर्म को मानते हैं। लद्दाखी समाज में इन्हें निम्न वर्ग का माना जाता है और ये पूरे लद्दाख में फैले हुए हैं। व्यवसाय से वे वादक एवं ढोलकिए होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मोन एवं दरदों के द्वारा लद्दाख का उपनिवेश सुगम रहा होगा जिसे तिब्बती चलवासियों की ओर से किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। फिर भी, कदाचित् मोनों और दरदों की आपस में कभी-कभी टक्कर होती थी जिसके फलस्वरूप मोनों की पराजय हुई और अंतत उनकी सामाजिक अवस्था बोटोओं से नीची हो गई। लद्दाख के बौद्धों द्वारा जिस सामाजिक तंत्र का अनुसरण किया जाता है उसकी एक आश्चर्यजनक विशेषता है, क्षीण रूप में ही सही उनके द्वारा अस्पृश्यता को मानना जिसका भगवान बुद्ध ने कड़ा खंडन किया था। समाज के अन्य वर्ग मोन के साथ न तो खाते-पीते हैं और न उनके साथ अन्तर्विवाह होता है। इस प्रकार मोनों की सामाजिक अवस्था भारत के हिन्दू समाज के अछूतों के जैसी ही है। समाज के ये त्यक्त लोग हालाँकि आर्यों के वंशज माने जाते हैं परन्तु इनके साथ वंश-दर-वंश जुड़े इस अमिट कलंक का कारण यह तो कदाचित् नहीं हो सकता।

ज़ांग्स्करपा

ज़ांग्स्करपा ज़ांग्स्कर शृंखला में बसे हुए हैं और कारगिल ज़िले के अंतर्गत आते हैं। ये प्रसिद्ध नुन-कुन चोटियों के पास स्थित रङ्दुम से लेकर करग्यक गाँव तक फैले हुए हैं। ज़ांग्स्कर के प्रमुख केन्द्र पदुम में कुछ सौ 'अरगोन' मुसलमानों को छोड़कर पूरी आबादी बोटो प्रजाति के बौद्ध हैं। ज़ांग्स्कर छुटपुट आबादी वाला क्षेत्र है जिसका घनत्व एक व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यह लद्दाख की सबसे कम उपजाऊ, सबसे ठंडे और एकाकी क्षेत्रों में से एक है। कम आबादी होने का एक प्रमुख कारण यह माना जाता है कि यहाँ के अधिकतर लोग बौद्ध हैं, जो लेह ज़िले के अपने बौद्ध परिस्थानी की भाँति सदियों से बहुपति प्रथा का अनुसरण करते रहे हैं।

जनसंख्या के बढ़ाव को रोकने में बहुपति प्रथा की स्पष्ट भूमिका के अलावा बौद्ध आबादी के छांग पीने की लत ने भी कदाचित् उसके पुरुषत्व को एक निश्चित स्तर तक घटाया है। जहाँ तक उनके मुसलमान भाइयों की बात है, उनके लिए बहुपति प्रथा एक घृणित रिवाज़ है और वे छांग एवं उसके अन्य आसुत प्रकार से परहेज़ करते हैं। ये अपनी आबादी में काफ़ी वृद्धि कर पाते हैं और इसीलिए बौद्धों के एकदम विपरीत हैं। जो थोड़े-बहुत सुन्नी लोग हैं, वे सब इस तहसील के केन्द्र पदुम में बसे हुए हैं। यहाँ की आबादी में मुसलमानों का होना ज़ोरावर सिंह के सैन्य-अभियानों का परिणाम है, जिसने ज़ांग्स्कर पर कब्ज़ा करने के बाद किश्तवाड़ से आए अपने कई अनुयायियों को पदुम में ज़मीन दिलाई और जो अंततः वहीं बस गए।

ज़ांग्स्कर लद्दाख के उन क्षेत्रों में से एक है जहाँ की परिस्थितियाँ अत्यधिक प्राचीन रही हैं। भूमि की कम उर्वरता के कारण केवल जौ और मटर की खेती यहाँ के लघु ग्रीष्म काल में हो पाती है जिस दौरान लोग अपने-अपने खेतों में व्यस्त रहते हैं। उनके भेड़, बकरियाँ और अपनी संतुलित और सुंदर चाल के लिए प्रसिद्ध टट्टू आदि ही उनकी प्रमुख सम्पत्ति हैं और व्यापार की विधि भी वस्तु विनिमय है। इस क्षेत्र के नगण्य साधन और लोगों में पहलशक्ति और उच्चाकांक्षाओं की घोर कमी के

कारण एक दुष्चक्र बन चुका है जिसे तोड़ पाना सरल नहीं। हालाँकि बहुपति प्रथा का पाँच दशक पहले ही क़ानूनी तौर पर उन्मूलन किया जा चुका है, फिर भी अन्य बौद्ध क्षेत्रों की तरह ही ज़ांग्स्कर में भी इस प्रथा ने जो ज़ोर पकड़ा था, वह अब भी जीवित है। बौद्धों को इस प्रथा से आर्थिक सुरक्षा और प्रथा के उपपरिणाम के रूप में ज्येष्ठाधिकार की व्यवस्था भी मिली है जिसके अंतर्गत ज्येष्ठ पुत्र सारी चल-अचल सम्पत्ति का वारिस होता है जिससे परिवार की सम्पत्ति का बँटवारा नहीं होता। यह प्रथा उनके लिए ऐसा बहुमूल्य वरदान है जिसे इतनी आसानी से त्यागा नहीं जा सकता। यह युक्ति प्राचीन ही सही परन्तु इसने ज़ांग्स्करवासियों को सदियों से संभाले रखा और इसीलिए उनके लिए इसका इतना महत्त्व है। छोटे मासूम बच्चों पर शैशवकाल से ही मठवादी जीवन के ब्रह्माचार्य को थोपा जाना भी भूमि के उत्प. ादन से जनसंख्या के अधिक न बढ़ पाने का कारण है। इस प्रथा का चाहे जो भी शारीरिक या आत्मिक लाभ हो, समय आ गया है कि इसमें सुधार किया जाए और इसके संख्यावाचक आयाम पर नियंत्रण किया जाए।

कारगिल के बाल्तियों के विपरीत, लेह ज़िले और ज़ांग्स्कर के बौद्ध अधिक आशावादी हैं। वे जीवन के सुखों को भोगते हैं, मदिरा पीना, नाचना-गाना पसंद करते हैं, जबकि उनका धर्म उन्हें इन वस्तुओं से परहेज़ करने की सीख देता है और त्याग का महिमागान करता है। इन लोगों के लिए दूसरे धर्मों के अनुयायियों का स्पर्श दूषण नहीं है और वे खुलकर दूसरे धर्मों के लोगों के साथ खाते-पीते हैं और अंतर्विवाह भी करते हैं। हाल के कुछ सालों तक भी कोई बौद्ध लड़की किसी मुस्लिम लड़के से विवाह करके भी अपने माता-पिता से संबंध बनाए रख सकती थी। ऐसे भी मामले हुए हैं जब बौद्ध पत्नी और मुसलमान पति अपने बच्चों को आपस में बाँट लेते और इस प्रकार कुछ बच्चों का बौद्ध और कुछ का मुसलमान की तरह पालन-पोषण होता। बौद्ध जनता बहुत सहनशील और उदार है। बौद्ध अपने धर्म के प्रति समर्पित हैं और वे बहुत सहृदय हैं। वे बौद्ध संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं परन्तु धर्म के प्रति उनकी यह श्रद्धा कट्टरता के चिह्न से भी मुक्त है।

दरद

दरद बोटो प्रजाति से अलग हैं। वे गिलगिट स्थित चिलास के दरदों के वंशज हैं जिनके पूर्वज अपनी मूल भूमि में उत्पीड़न के दबाव के कारण सदियों पहले लद्दाख आ गए थे। दरद प्रजाति के जो लोग कारगिल ज़िले के द्रास क्षेत्र में बस गए उन्हें ब्रोकपा कहा जाता है जबकि जो दा-हनु और दरचिक्स, गरखोन में बसे हुए हैं, ड्रोकपा कहलाते हैं। इन विशिष्ट जातिगत समूहों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है जो कि अनोखा एवं मनोहर है।

ब्रोकपा

ब्रोकपा गर्वीले और हट्टे-कट्टे होते हैं, जो लद्दाख में बसने के बाद भी अपने आर्य नैन नक्श लिए हुए हैं। वे गिलगिट स्थित चिलास के दरदों के वंशज हैं और शताब्दियों के बाद भी अपने पूर्वजों द्वारा लाए गए कुछ असाधारण प्रथाओं को आज भी सुरक्षित रखे हुए हैं। वे सुन्नी मुस्लिम हैं और धार्मिक रीतियों में क्षेत्र के अन्य मुस्लिम वर्गों से अपनी भिन्नता बनाए रखते हैं। ये लोग सजातीय विवाह के पक्षपाती हैं और उनके आर्य नैन नक्श उन्हें उनके बाल्ती पड़ोसियों से अलग करते हैं। धैर्य, सहनशीलता और परिश्रम की असाधारण शक्तियों से सम्पन्न विकट समस्याओं का सामना करते हुए वे अपने जीवन निर्वाह के लिए एक भयंकर युद्ध लड़ते रहते हैं। *कनिंघम* के अनुसार दरदी लोगों द्वारा अपनी मूल भूमि में अनेक बोलियाँ बोली जाती थीं जैसे शीना, खजुनाह और अरनिया। शीना बोली अस्तोर, गिलगिट, चिलास, दारेल, कोहली ओर पालास के लोगों द्वारा बोली जाती है। यासान और चित्राल में खजुनाह बोली का इस्तेमाल होता है। इन बोलियों में आपस में कोई समानता नहीं है और वे आसपास के क्षेत्रों की बोलियों से भी बहुत अलग हैं। द्रास के ब्रोकपाओं के लिए बातचीत का माध्यम शीना है हालाँकि वे आसपास के बाल्तियों से बाल्ती भाषा में ही उतनी ही सरलता एवं धाराप्रवाह ढंग से बातें करते हैं। इन लोगों ने द्रास पहुँचकर इस्लाम को अपनाया था और समय बीतने के साथ उनकी मूल प्रथाएँ और लोकसाहित्य का अभिलोपन होता गया। द्रास क्षेत्र में कभी-कभी पारा शून्य से 40 डिग्री नीचे तक भी गिर जाता है और बर्फ़ घरों की छत को छूने लगती है।

जलवायु की विषमता से ब्रोकपाओं का जीवन कठिन और उनकी आर्थिक उन्नति अत्यंत दुष्कर हो गई है। उनका कड़कपन और परिश्रम ही निर्दय प्रकृति की विषमताओं के विरुद्ध लड़ने के लिए उनकी अकेली सम्पदा है।

ड्रोकपा

बौद्ध समुदाय की इस विशिष्ट प्रजाति में लेह ज़िले के उत्तर-पश्चिम में स्थित द हनु, दरचिक्स एवं गरखोन आदि गाँवो के ड्रोकपा आते हैं। हालाँकि लेह ज़िले के बौद्धों के इनके सांस्कृतिक साम्य के आधार पर इन्हें उस ज़िले के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार में होना चाहिए था परन्तु एक अस्पष्ट प्रशासनिक अव्यवस्था के चलते वे स्वयं को कारगिल ज़िले के अंतर्गत पाते हैं। इनके पूर्वज अपनी सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखने के लिए बहुत पहले दरदिस्तान की अपनी भूमि को छोड़कर इस क्षेत्र में आ बसे जब अपनी मातृभूमि में रहकर अपने बौद्ध धर्म को कायम रख-पाना उनके लिए असंभव हो गया। पूर्व के बौद्ध समुदायों की तरह बौद्ध धर्म का अनुसरण करने और उनके जैसी ही सामाजिक व्यवस्था से परिचालित होने पर भी, इन लोगों ने अपनी मूल परंपराओं को कायम रखा है और अपनी आर्य रूपरेखा और पोशाक की आश्चर्यजनक विशेषताओं के कारण अन्य समुदायों से आसानी से पहचाने जा सकते हैं। ड्रोकपा महिलाएँ अपने आर्य नैन-नक्श के साथ स्त्री सुलभ लावण्य की मोहक उदाहरण हैं और अन्य लद्दाखी महिलाओं की तरह ही कठोर श्रम करने के विशाल सामर्थ्य से पूर्ण हैं।

ड्रोकपाओ को इस्लाम को अंगीकार न करने और बौद्ध धर्म को भी उसकी समग्रता में न अपनाने का श्रेय जाता है, जिस कारण वे अपनी मूल भूमि से अपने साथ लाई संस्कृति और परंपराओं का अधिकांश भाग सुरक्षित रख पाए हैं। *फ्रैंकी* के अनुसार, ड्रोकपा आज भी बौद्ध धर्म के उसी रूप को मानते हैं जो उनके प्रवास से पहले गिलगिट में प्रचलित था। इन लोगों में कुछ अनोखी रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। हर तीसरे वर्ष ये लोग एक उत्सव मनाते हैं जब कुछ समय के लिए वे अपने पुराने डोगरा और तिब्बती स्वामियों के द्वारा अपने दमन के कटु इतिहास को भूल जाते हैं। यह उत्सव उन्हें पूर्णतः दरदी बनने और दरदी गीत गाने का एक अवसर देता है,

साथ ही वे अपने बीते हुए कल में झाँकने का भी मौक़ा पाते हैं जिसे वे अपने दिलों में सँजोए रखते हैं। वे स्वयं को देवों के द्वारा परित्यक्त समुदाय मानते हैं और इस विश्वास के प्रमाण के तौर पर एक वार्षिक उत्सव मनाते हैं। अपने चूल्हे के बीचोंबीच रखे एक पत्थर की वे पूजा करते हैं। ये लोग प्रतिभाशाली होते हैं और विशेषकर कुशल नक़्क़ाशीकार होते हैं जैसा कि खलत्से और हुनुपाटा में पाए गए शिला-चित्रों से प्रमाणित है।

ड्रोकपा अपनी शारीरिक सुन्दरता के कारण इतने विशिष्ट नहीं हैं जितने कि अपनी अनोखी परंपराओं के कारण, विशेषकर उनके द्वारा पालित वे वर्जनाएँ जो उन्हें दूसरों से अलग करती हैं और जिनका संसार भर में कोई साम्य नहीं है। इन वर्जनाओं की उत्पत्ति आश्चर्यजनक है जिन्हें आज तक संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं मिल पाया है। वे न मुर्ग़ियाँ पालते हैं और न अंडा खाते हैं। प्रत्येक जीव के महत्त्व से जुड़ी बुद्ध की शिक्षा कदाचित् इसका कारण हो सकती है। गाय के प्रति अपनी श्रद्धा के चलते वे न तो उसका दूध पीते हैं और न ही दूध से बनी किसी वस्तु का इस्तेमाल करते हैं। इसलिए दूध बछड़े को ही पिलाया जाता है या अपनी जाति के बाहर के लोगों को दे दिया जाता है। वे ज़ो (याक और गाय का संकर) भी पालते हैं जिसे बेचा जाता है। वे गाय के गोबर को भी जलवान या खाद के लिए इस्तेमाल नहीं करते क्योंकि आधुनिक सभ्यता से पूर्णतः अछूते इन प्राचीन, सरल लोगों के लिए यह भी एक अभिशाप है। ये अतर्कपूर्ण वर्जनाएँ अंधविश्वास के शिकार हुए इन लोगों के गले में एक आर्थिक बोझ है। ये लोग जौ के स्थानीय प्रकार 'ग्रिम' से बना छांग और जौ एवं अंगूर से बनी शराब प्रतिदिन पीते रहते हैं और कद्दाचित् नशीली शराब की यह लत और दूध एवं उससे उत्पन्न वस्तुओं से परहेज़ ही एक समुदाय के तौर पर उनकी अप्रजायी और घटती जनसंख्या का कारण है। इन लोगों को आर्थिक एवं शारीरिक स्तर पर दुर्बल बना रहे इन अतर्कपूर्ण वर्जनाओं की दासता से मुक्त कराने के कुछ शुभचिंतकों द्वारा किए गए सच्चे प्रयास निष्फल ही रहे, क्योंकि इनके भीतर एक गहरा विश्वास बैठा हुआ है कि परंपराओं और रीतियों का पालन न करने पर वे दैवी प्रकोप के भागी होंगे जो फोड़े-फुनसी और बीभत्स रोगों के रूप में सामने आएँगे। अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रखने पर वे विशेष ध्यान देते हैं।

दुर्भाग्य से बचने के मन्तव्य से वे कभी हाथ-मुँह नहीं धोते। कदाचित् इसी डर से वे अपने नवजात शिशुओं को भी नहीं नहलाते। इस प्रकार के अतार्किक विश्वासों के चलते एवं छांग की अत्यधिक लत के कारण उन्हें पोषक आहार नहीं मिल पा रहा है और वे अप्रजायी हो गए हैं जिससे उनकी संख्या घटती जा रही है। अगर समय रहते इस ओर कोई उपचारिक क़दम नहीं उठाए गए तो इस विशिष्ट जनसमूह के लुप्त हो जाने का ख़तरा है। इसलिए इस प्रजाति को बचाने के लिए गंभीर एवं अच्छी तरह निर्देशित प्रयास किए जाने चाहिए अगर हम केवल एक पुरावशेष या मानववैज्ञानिक अध्ययन के विषय के तौर पर इनका परिरक्षण नहीं चाहते हों तो और इस लक्ष्य तक पहुँचने का सबसे प्रबल उपकरण है वास्तविक एवं सार्थक शिक्षा, जिसका लक्ष्य इन लोगों को ज्ञानसंपन्न करना हो।

हालाँकि पश्चिमी तिब्बत की उन्नति में दरदों का प्रभाव काफ़ी महत्त्वपूर्ण लगता है, फिर भी रोचक बात यह है कि वे लद्दाख के विभिन्न भागों, जहाँ वे बसे हुए थे, से पूरी तरह से लुप्त कैसे हो गए। *फ़्रैंकी* के अनुसार, न्येरग्स के दरद राजा द्वारा बलपूर्वक श्रम कराने की आज्ञा का विरोध करने के कारण अपने काल से मिल गए। संभवतः उन्हें उन्हीं के दुर्ग में तिब्बतियों के द्वारा घेर लिया गया था और जब उनके खाने-पीने की सारी सामग्री समाप्त हो गई तब उन्होंने संकल्प लिया कि सब दुर्ग के मुख्य भवन में एक साथ मृत्यु को गले लगाएँगे। इस प्रकार समूह के सबसे वृद्ध व्यक्ति ने छत को सहारा देने वाले मुख्य खंबे को धकेल दिया जिससे सब छत के नीचे दब गए। परन्तु राजा की अवज्ञा करने वाले हनु के एक बूढ़े दरदी को अलग से बंदी बनाया गया। उसे दीवार में चुनवाते समय, दीवार के उसके गर्दन तक पहुँचने पर उसे अपना फ़ैसला बदलने का एक अंतिम मौक़ा दिया गया। परन्तु वह अपनी बात पर अड़ा रहा और दीवार को बंद कर दिया गया। उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया क्योंकि आगे चलकर राजा ने अपने राज्य में दरदों को बलपूर्वक श्रम से मुक्ति दे दी। इसी से यह कहावत सामने आई– ''जिस प्रकार कुत्ते पर बोझ नहीं लादा जा सकता, उसी प्रकार दरदों से बलपूर्वक श्रम नहीं कराया जा सकता।''

बाल्ती

बाल्ती दरद और मंगोली खून के आपसी मिलन से उत्पन्न एक जातीय प्रकार है। ये बाल्तीस्तान और कारगिल ज़िले में रहते हैं और इस्लाम के शिया मत को मानते हैं। इनका इतिहास हालाँकि नवीं शताब्दी तक मिलता है परन्तु इनके उद्‌भव का मूल दुर्बोध है। इनके लिए चंचलता, आमोद-प्रमोद और हर प्रकार का मनोविनोद वर्जित है। एक व्यापक निराशावाद इन लोगों के जीवन के हर पहलू को ढाँके रहता है। बाल्ती अपने धर्म के प्रति अत्यंत समर्पित होते हैं और धार्मिक सिद्धांतों के प्रति श्रद्धा के कारण ही उनका मन संसार की समस्याओं से अधिक परलोक की चिंता से घिरा रहता है। इनके द्वारा विवाह की जिस पद्धति का पालन किया जाता है उसे 'मुताह' कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक विवाह दोनों पक्षों के बीच एक अनुबंध है जो एक सुनिश्चित काल के लिए होता है। यह अवधि एक सप्ताह या उससे भी कम की हो सकती है। जो विवाह प्रायः स्थायी होने के निश्चय से किया जाता है, वह लंबे समय के लिए अनुबंधित हो जाता है। बौद्ध जनसंख्या पर लागू नियंत्रण के विपरीत, कारगिल ज़िले में, जोकि प्रमुखतः मुस्लिम क्षेत्र है, जनसंख्या की वृद्धि भूमि के उपखंडन के दर के समानुपात में हो रही है, जिससे नवजातों की लगातार बढ़ती संख्या को पाल पाने में भूमि असमर्थ हो रही है। हालाँकि, ज़िले में सशस्त्र दलों का काफ़ी संख्या में तैनात होना, पर्यटकों और विकासात्मक क्रियाओं के कारण बाल्तियों की आर्थिक स्थिति में काफ़ी सुधार हुआ है।

पुरीगपा

ये लोग पुरीग के निवासी हैं जिसके अंतर्गत रङ्‌दुम से लेकर द्रास एवं सुरु नदी के संगम तक का क्षेत्र, बाटालिक तक का सोद पठार और कारगिल के पूर्व में फोतोकला और शकर चिकतन की घाटी तक का पूरा क्षेत्र आता है। कारगिल ज़िले की अधिकतर जनसंख्या शिया सम्प्रदाय के पुरीगपा हैं, जिनमें कुछ हज़ार बोटो प्रजाति के बौद्ध भी हैं जो राष्ट्रीय राजमार्ग के आस-पास बसे हुए हैं। इन लोगों के जीवन निर्वाह का प्रमुख स्रोत कृषि है और इनकी साक्षरता का दर बहुत कम है। इनकी बोली बोधी और बाल्ती का मिला-जुला रूप है और ये मिट्‌टी के घरों में रहते

हैं। ये लोग घरों में ही काते गए कच्चे ऊन के वस्त्र पहनते हैं।

वेशभूषा एवं आभूषण

वेशभूषा एवं आभूषण के उल्लेख के बिना लद्दाखियों का वर्णन अधूरा है। बोटोओं की वेशभूषा अनोखी और चित्रोपम होती है जोकि तिब्बतियों की वेषभूषा से भी मेल नहीं खाती। ऐसा लगता है कि विषम जलवायु एवं सामाजिक बनावट के अनुसार ही इनकी वेशभूषा बनी है। इनमें सर्प, सूर्य एवं चन्द्र की पूजा विषयक प्राचीन विश्वासों का प्रभाव भी नज़र आता है, जिनमें चमत्कारिक शक्तियाँ होने और अशुभ प्रेतात्माओं को दूर रखने की क्षमता होने का विश्वास किया जाता है। सामान्यतः निम्न सामाजिक वर्ग के पुरुष सफ़ेद ऊनी वस्त्र पहनते हैं और उच्च वर्ग के पुरुष गहरे लाल रंग के 'गोन्चा' पहनते हैं। ये लबादे जैसा वस्त्र जो दिन-रात पहना जाता है यहाँ का सार्वजनिक वस्त्र है, हालाँकि भारतीय एवं यूरोपीय वस्त्रों को भी अब प्रोत्साहन मिल रहा है। औपचारिक अवसरों पर लद्दाखी अभिजात वर्ग सिंथेटिक या काले मख़मल के बने गोन्चा पहनते हैं। बाल्ती अपने गोन्चा के लिए सादा कपड़ा इस्तेमाल करते हैं। पहले बौद्ध पुरुष मूँगा एवं विभिन्न रंगों के अल्प मूल्यवान रत्नों को आपस में सजाकर बनाए गए कुण्डल, कण्ठी, कड़े आदि पहनते थे जबकि धनी वर्ग सोने के कर्णफूल पहनता था। आज शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोग आभूषणों का कम ही प्रयोग करते हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी लोग कृत्रिम आभूषणों का इस्तेमाल करते हैं। टोपी को लेकर कोई वर्ग भेद नहीं है जो सबके लिए एक समान ही है। टोपी पीछे से गर्दन तक पहुँचती है और उसका निचला हिस्सा ऊपर की ओर मुड़ा हुआ होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई पुरुष आज भी चोटियाँ रखते हैं जबकि शहरों में इसका चलन समाप्त हो चुका है। ड्रोकपाओं द्वारा सिर पर पहना जाने वाला आभूषण बोटोओं से भिन्न है। वे ऊनी टोपी पहनते हैं जिसके सिरे ऊपर की ओर मुड़े होते हैं। इस टोपी पर उनके अपने क्षेत्र में खिलने वाले तरह-तरह के लाल फूल जड़े होते हैं। ये फूल सूख जाने पर भी अपना चटकीला रंग नहीं छोड़ते।

महिलाओं की पोशाक भी पुरुषों की पोशाक के समान ही होती है परन्तु इनमें यह अंतर होता है कि उनकी रंगी हुई पोशाकों के किनारे सुंदर कढ़ाई की होती है,

वे अधिक आभूषण पहनती हैं और उनके कमरबंद से लटकती घंटियाँ उनकी चाल में एक संगीतमय संस्पर्श डाल देती हैं। अपनी पीठ पर वे बकरी की ख़ाल पहनती हैं। ख़ाली पीठ समाज में निकलना महिलाओं के लिए अशोभनीय माना जाता है। कुछ महिलाएँ पुरुषों के जैसी टोपियाँ पहनती हैं परन्तु अधिकतर महिलाएँ एक विचित्र परन्तु मूल्यवान आभूषण 'पेरक' पहनना पसंद करती हैं। 'पेरक' कोबरा नाग के आकार के कपड़े पर फ़िरोज़े रत्नों को कलात्मक ढंग से सजाकर जड़ा गया आभूषण है। इस कोबरा का फन सिर को ढँके रहता है और बाक़ी हिस्सा पीठ से होते हुए कमरबंद से थोड़ा नीचे तक पहुँचता है। पेरक के बगलों में दोनों तरफ़ याक के ऊन से बने पल्ले होते हैं जो ठंडी वायु से कानों को बचाने के उद्देश्य से अस्तित्व में आए परन्तु पारंपरिक पेरक का अनिवार्य अनुलग्न बन गए। माना जाता है कि कानों के ये पल्ले एक शाही आदेश के अंतर्गत अस्तित्व में आए। किसी राजा की पत्नी को सर्द मौसम के कारण कान की कोई बिमारी हो गई। तब राजा ने सारी महिलाओं को अपने कानों को इसी प्रकार ढँकने का आदेश दिया जो आगे चलकर महिलाओं की औपचारिक वेशभूषा का एक अभिन्न अंग बन गया। लद्दाखी महिलाएँ कभी भी ख़ाली सिर नृत्य नहीं करती। वे एक रंगीन दुलाई वाली टोपी पहनती हैं। नृत्य की वेशभूषा में उनकी क्रियाएँ और उनकी स्थिर एवं सुंदर मुद्राएँ काफ़ी मनोरंजक होती हैं। पुरुष एवं महिलाएँ दोनों पतली ऊँनी पाजामें पहनते हैं। कारगिल और बाल्तीस्तान में कुमारियाँ सफ़ेद एवं विवाहित स्त्री काले रंग के पाजामे पहनती हैं। पुरुष एवं महिलाएँ दोनों के गोन्चे कमरबंद से कसे रहते हैं जो कई रंगों के होते हैं। इससे वस्त्र को एक सुव्यवस्थित रूप मिल जाता है। तुङ्लक कहलाने वाले शंख के कड़े, सारी महिलाओं के लिए अनिवार्य है। किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का स्वागत करते हुए वे अपनी कलाइयों के इन कड़ों को आपस में तीन बार टकराती हुई वर्णनातीत सौम्यता एवं लावण्य के साथ विनम्रता से स्वागत करती हैं। संक्षेप में लद्दाखी स्त्री सौम्यता एवं मृदुता को भरपूर ढंग से अपने में सँजोए हुए, है जोकि स्त्रियोचित लालित्य का मर्म है। ड्रू के शब्दों में ''अपनी पूरी साज-सज्जा में एक लद्दाखी महिला यूरोप के फैशनप्रिय महिलाओं के बीच भी सनसनी फैला सकती है।''

स्त्री की सामाजिक स्थिति

लद्दाख की बौद्ध महिलाएँ बहुत स्वाधीन हैं। इनके द्वारा भोगी जा रही स्वाधीनता के स्तर की पूर्व में कदाचित् की ही कोई समानता हो। स्त्री-पुरुष के परस्पर व्यवहार में पूर्ण स्वतंत्रता है जिसका प्रमाण पुरुषों की संगति में युवतियों में संकोच का पूर्ण अभाव है। *माईकल पेसेल* के अनुसार, 'काम को निषेधकारी वर्जनाओं के नीचे दबाया नहीं जाता जो स्त्री को एक अविश्वसनीय गरिमा प्रदान करता है। उन्हें पुरुषों के साथ लंबी यात्राओं पर जाने में कोई डर नहीं होता, चाहे कई बार पुरुष बिल्कुल अपरिचित ही क्यों न हो।' विवाह एवं अन्य सामाजिक उत्सवों में नृत्य हर्ष उल्लास का एक अभिन्न अंग होता है। पुरुष एवं महिलाएँ अपनी मर्यादा के भीतर अपनी पा. रंपरिक शैली में साथ-साथ नाच-गान करते हैं। इसके अलावा महिलाएँ भी अपने मुहल्लों में हर्ष उल्लास संबंधी उत्सव के लिए इकट्ठा होती हैं जो विशेषकर मि. हलाओं के लिए ही होती है परन्तु इसमें दर्शक के तौर पर युवा पुरुष भी आते हैं जो इन महिलाओं को चाय बनाने एवं बारी-बारी से नृत्य कर रही महिलाओं को खान-पान की वस्तुएँ परोसने में सहायता करते हैं।

लद्दाख की महिलाएँ बहुत गुणवन्त होती हैं। आधुनिक शिक्षा की जब इस क्षेत्र में बहुत प्रगति नहीं हुई थी, तब भी उनमें अपने सामाजिक वातावरण के अन. ुकूल उपलब्धियों की कमी नहीं थी। लगभग सभी महिलाएँ अपनी मातृभाषा बोधी में पढ़ना और लिखना जानती थी। समय बीतने के साथ उन्होंने विभिन्न व्यवसायों में अपनी पहचान बनाई जिनमें चिकित्सा शास्त्र भी शामिल है। आदर्श गृहिणी होने के साथ-साथ लद्दाखी स्त्री अपने परिश्रम एवं धैर्य में अद्वितीय है। पुरुषों की तरह ही, इनकी शारीरिक मज़बूती एवं ऊर्जा क्षेत्र की विषमता और व्यापक निरसता की अवस्थिति के एकदम अनुकूल है। यहाँ की महिला मज़दूरों की आश्चर्यजनक ओजस्विता या ऊर्जा को *फ़्रेड्रिक ड्रू* ने सही शब्दों में व्यक्त किया है, 'इस क्षेत्र के रिवाज़ अनुसार महिला कूलियों द्वारा मेरा सामान ढोया गया जो अपनी पीठ पर साठ पाउण्ड का वज़न उठाकर 23 से 24 मील की यात्रा करने के बाद भी अंत में प्रसन्न मन से गाती नज़र आईं।' जहाँ गर्मियों में महिलाएँ आश्चर्यजनक ढंग से खेती का

काम सँभालती हैं वहीं निरानंद सर्दियों में वे अपने चूल्हों के पास बैठकर कताई, बुनाई करती, माला फेरती या मणिचक्र को घुमाती नज़र आती हैं। जलावन की कमी के कारण महिलाएँ रास्तों से चलती या खेत की ओर जाती हुई जानवरों का गोबर इकट्ठा कर अपनी पीठ पर बँधी टोकरी में डालती जाती हैं जो इस और अन्य कार्यों के लिए ही होती है। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ प्रायः घास, चारा या सब्ज़ियों का बोझ उठाकर शहर के बाज़ार में बेचने के लिए जाती दिखती हैं। कुछ महिलाएँ दुकानें चलाती हैं और कुछ वस्तुओं के लिए विक्रेता का काम भी करती हैं। वे कुशल सवार हैं और अपनी सवारी का कुशलपूर्वक संचालन कर सकती हैं। वे घोड़े पर सवार होकर व्यक्तिगत कार्य या दूरस्थ दर्शनस्थल की यात्रा पर जाने से नहीं हिचकिचातीं।

स्त्री-पुरुष के बीच क्योंकि खुला व्यवहार होता है इसलिए हर युवती अपने भावी जीवन साथी को लगभग अच्छी तरह से पहचानती है। लड़की को अपना पति स्वयं चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है और यदि विवाह-प्रस्ताव उसके माता-पिता के द्वारा रखा गया हो, तो विवाह होने से पहले लड़की की स्वीकृति आवश्यक मानी जाती है। परन्तु कुछ स्थितियों में लड़की माता-पिता की इच्छा के बाहर अपना पति चुन लेती है। लद्दाखी बौद्धों के लिए विवाह एक संधि है जो दोनों में से एक पक्ष द्वारा भी तलाक की माँग करने पर समाप्त की जा सकती है। यदि तलाक की माँग पत्नी के द्वारा की गई है तो उसे पति को दहेज का वह हिस्सा लौटाना पड़ता है जो पति ने दिया था और जितना ख़र्च पति के द्वारा विवाह पर किया गया, उसकी दोगुणी राशि लौटानी पड़ती है। यदि विवाह की समाप्ति की माँग पति के द्वारा की गई है तो पत्नी को पति की तरफ़ से दिए गए उपहारों समेत अपना दहेज रखने का अधिकार होता है। इस स्थिति में उपहारों के ख़र्च को लौटाने की बात नहीं आती क्योंकि लद्दाख के बौद्धों में विवाह से पहले उपहार दुल्हे के माता-पिता के द्वारा दुल्हन के परिवार को दिए जाते हैं। तलाक के सारे मामलों का स्थानीय बुजुर्ग अवलोकन एवं निराकरण करते हैं। विधवा यदि चाहे तो दोबारा विवाह कर सकती है।

बौद्ध लड़की को विवाह करने, आजीवन अविवाहित रहते हुए अपने पिता के घर में रहने या भिक्षुणी बनकर मठवादी जीवन को अपनाने की स्वतंत्रता होती है। आर्थिक कारणों से इस क्षेत्र में सदियों से बहुपति-प्रथा चली आ रही थी। इस प्रथा के अनुसार लड़की का विवाह औपचारिक ढंग से परिवार के सबसे बड़े बेटे से कराया जाता था परन्तु घर के अन्य बेटों का स्वतः उसपर अधिकार माना जाता था। यही वह साधन या सामाजिक सुरक्षा का प्राचीन रूप था जिसने इन लोगों को इस अत्यंत अशरण्य क्षेत्र में भूखमरी से बचाए रखा और बाल्तियों की तरह अपने परिवार के जीवन निर्वाह की वस्तुएँ इकट्ठा करने के लिए दूर-दूर जाने से भी बचाए रखा। परन्तु इस शामक औषधि ने एक घातक विष की तरह काम किया, जिसने उन्नति के सारे उपक्रम को नष्ट कर दिया और एक संकीर्ण आत्मसंतोष और दुर्बल बना देने वाली संतुष्टि ने अकर्मण्यता और निष्क्रियता के महत्व को बढ़ाया जिस कारण इन लोगों का विलोपन होना निश्चित था यदि समय रहते इनमें सद्बुद्धि न आई होती।

बहुपति-प्रथा के अनुसार एक स्त्री के पास पतियों की संख्या के समान दर में शक्तियाँ होती थीं, क्योंकि वह अपनी इच्छानुसार उनपर कृपा-दृष्टि दिखा या हटा सकती थी जिससे उनपर उसका असीम प्रभाव बना रहता। उत्तराधिकारिता के प्राचीन नियम के अनुसार, सम्पत्ति का कोई पुरुष उत्तराधिकारी न होने पर पुत्री अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार कर सकती थी और इस स्थिति में वह 'मकपा' प्रथा के अनुसार विवाह करती जिसके अंतर्गत पति अपने पिता का घर छोड़कर पत्नी के पिता के घर में रहता और वहीं अपना परिवार बसाता। हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, जो लद्दाख के बौद्धों पर भी लागू होती है, के तहत लड़की उपरोक्त स्थिति में अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार कर सकती है। हालाँकि बहुपति-प्रथा को सामाजिक आवश्यकता के तौर पर आज भी पहले की तरह समर्थन मिलता है परन्तु आज इस प्रथा को अपनाने वाले नहीं के बराबर हैं।

जम्मू-कश्मीर का संविधान, जिसका लद्दाख एक अभिन्न अंग है, राज्य की महिलाओं को निम्नलिखित अधिकार देता है।

(i) समान कार्य के लिए समान वेतन,

(ii) प्रत्येक रोज़गार में मातृकल्याण और पर्याप्त चिकित्सा सेवा का अधिकार,

(iii) तलाकशुदा या परित्यक्त विवाहित महिलाओं के लिए उचित रख-रखाव का अधिकार,

(iv) प्रत्येक सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक मामलों में पूर्ण समानता का अधिकार,

(v) अशिष्ट व्यवहार, मानहानि, गुण्डागर्दी एवं अन्य प्रकार के दुराचार से विशेष सुरक्षा का अधिकार।

अतः लद्दाख समेत जम्मू-कश्मीर राज्य की महिलाओं के अधिकारों को संविधान द्वारा सुरक्षित किया गया है जो उनको हर क्षेत्र में पुरुषों के बराबर का पद देता है।

शिक्षा के क्षेत्र में लद्दाख द्वारा लिए जा रहे क़दम, उसकी आर्थिक उन्नति, पर्यटकों से उसका पारस्परिक आदान-प्रदान, आदि से लद्दाख और उसकी महिला. ओं का आधुनिकता से पर्याप्त सामना हुआ है। तेज़ी से बदलती इन परिस्थितियों में लद्दाख की महिलाएँ समय बीतने के साथ निस्संदेह काफ़ी दूर तक आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता का अनुभव करेंगी और लद्दाख के हर प्रगतिशील आंदोलन में भी वह अपनी पूर्ण भागीदारी रखेंगी। लेह में पहले से ही महिलाओं का एक राजनीतिक संगठन है जिसने देश की आज़ादी के समय क्षेत्र में उठे राजनैतिक संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाई थी। वह संघर्ष जो इस क्षेत्र के प्रति राज्य सरकार के सौतेले व्यवहार के कारण उत्पन्न हुआ था और जिस समय इस महिला संगठन ने लद्दाख की स्त्रियों में राजनैतिक चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

6

धर्म

लद्दाख क्षेत्र में प्रमुखतः तीन धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं– इस्लाम, बौद्ध धर्म एवं ईसाई। बौद्ध एवं मुसलमानों की संख्या लगभग समान है– लेह ज़िला प्रमुखतः बौद्ध क्षेत्र है और कारगिल ज़िला प्रमुखतः शिया मुसलमानों से आबाद है। दोनों ज़िलों में कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ केवल मुसलमान या केवल बौद्ध रहते हैं हालाँकि अगर पूरे क्षेत्र के जनसांख्यिकीय चित्र को देखा जाए तो उत्तर एवं पूर्व में बौद्ध अधिक हैं और दक्षिण एवं पश्चिम में अधिक मुसलमान। कारगिल ज़िले का ज़ांग्स्कर क्षेत्र तत्त्वतः एक बौद्ध बहुसंख्यक क्षेत्र है और यहाँ की आबादी में मुसलमानी तत्त्व के होने का कारण ज़ोरावर सिंह के सैन्य अभियान हैं। उसने इस क्षेत्र पर कब्ज़ा करने के पश्चात् किश्तवाड़ के अपने अनेक अनुचरों को यहाँ छोड़ दिया था, जो अंततः स्थायी तौर पर इस क्षेत्र में बस गए। दूसरा वृतान्त यह है कि राजा सिंगे नमग्यल ने अब्दुल रज़ाक नामक एक कश्मीरी मुसलमान को ज़ांग्स्कर में अपने पुत्र देछोग नमग्यल की सहायता के लिए भेजा, जो ज़ांग्स्कर एवं स्पीती पर राज करता था। अब्दुल रज़ाक अंततः ज़ांग्स्कर में ही बस गया और वहाँ इस्लाम के विस्तार के लिए एक केन्द्र स्थापित किया। इसके अलावा कश्मीर एवं यारकंद से आने वाले कई अप्रवासियों ने स्थानीय महिलाओं से विवाह कर लिया जिनके वंशज आज अरगोन नाम से जाने जाते हैं। लेह शहर, उसके आसपास के कुछ गाँव और शायोक नदी से नीचे उत्तर-पश्चिम की ओर नूबरा के तुरतुक-बोगदङ् क्षेत्र में मुसलमानों का एक छोटा परन्तु प्रभावशाली वर्ग रहता है। जनसंख्या का तीसरा अंग ईसाई है जिसके अंतर्गत अपनी शिक्षा एवं सामाजिक स्थिति के कारण अभिजात बने 150 परिवार आते हैं। इन तीनों समुदायों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस्लाम

जैसा कि ऊपर बताया गया है, लद्दाख क्षेत्र दो स्पष्टतः भिन्न ज़िलों में विभाजित

है– लेह ज़िला प्रमुखतः बौद्ध है जहाँ लेह शहर और उसके आसपास के कुछ गाँवों में थोड़े बहुत मुसलमान भी रहते हैं, और कारगिल ज़िला प्रमुखतः मुस्लिम क्षेत्र है जहाँ बौद्धों की जनसंख्या कम है। स्कर्दू, गिलगिट और सिङ्क्यङ् के आसपास का कुछ क्षेत्र आपस में एक संयुक्त खंड हुआ करता था जहाँ प्राचीन समय में बौद्ध धर्म प्रचलित था जैसा कि प्राप्त शिलालेखों से प्रमाणित है। कुछ स्पष्ट स्थानीय भिन्नताओं के अलावा बाल्तीस्तान में बोली जाने वाली भाषा की लेह क्षेत्र की बोलियों से काफ़ी समानता है। इसलिए इस बात को सामने लाना आवश्यक है कि कैसे एक समय पर प्रचलित बौद्ध धर्म का स्थान वहाँ इस्लाम ने ले लिया जो आज वहाँ का प्रमुख धर्म है।

बाल्तीस्तान में प्रचलित विश्वास के अनुसार क्षेत्र में इस्लाम को लाने का श्रेय हज़रत आमिर कबीर सैयद अली हमदानी को है जो कश्मीर में शाही हमदान के नाम से प्रसिद्ध हैं। शिगर के एक मस्जिद को वहाँ का पहला मस्जिद होने का श्रेय प्राप्त है। लोगों का विश्वास है कि यह मस्जिद इसी मुस्लिम अनुयायी ने बनवाया था। स्थानीय लोग इन्हें लद्दाख में पहले-पहल हुए धर्म परिवर्तनों का श्रेय देते हैं और मानते हैं कि कश्गार जाते हुए वे लद्दाख से गुज़रे थे जब उन्होंने यह कार्य किया, परन्तु ऐतिहासिक प्रमाण इस मत से मेल नहीं खाते। आमिर ने तीन बार कश्मीर की यात्रा की– पहली बार[27] दिल्ली सुल्तान शहबुद्दीन (1320-1375 ईस्वी) के शासन के समय छः महीने के लिए वे दिल्ली गए, दूसरी बार सुल्तान कुतुबुददीन के शासनकाल में सन् 1379 में वे 700 अनुयायियों के साथ दिल्ली गए और सन् 1382 में तीसरी और अंतिम बार। समकालीन लेखकों द्वारा आमिर की यात्राओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है परन्तु किसी भी प्रासंगिक दस्तावेज़ में उनके बाल्तीस्तान जाने का उल्लेख नहीं मिलता हालाँकि मौखिक परंपरा में उनके बाल्तीस्तान यात्रा की बात प्रचलित है। चोरकाना के मौलवी सैयद अब्बास ने सैयद अली हमदानी द्वारा हाथ में एक लाठी लिए कश्मीर में प्रवेश करने की बात कही है। यह लाठी उस क्षेत्र में इस्लाम के प्रचार के उनके संकल्प का सूचक था। बाल्तीस्तान के अपनी बाद की यात्रा के दौरान वे स्कर्दू में इस्लाम का प्रचार करने में

[27] Al Haj Maulvi Hashmatullah Khan, History of Baltistan.

सफल रहे और उन्होंने वहाँ के पहले मस्जिद की स्थापना की। स्कर्दू के बाद आमिर शिगर में धर्म के प्रचार हेतु गए। इस प्रकार उन्होंने कोथङ् से ब्रलदो और नेती से बाशा तक इस्लाम का परचम लहराया। उन्हें शिगर के मस्जिद के निर्माण का श्रेय भी दिया जाता है जहाँ आज भी उनकी लाठी का होना माना जाता है। हस्तामुल्लाह ख़ान के अनुसार उन्होंने चेहारुन्जी में भी एक मस्जिद बनवाया जिसकी भीतरी दीवारों पर उन्होंने स्वयं कुरान की आयतें लिखीं। आमिर के पुत्र सैयद मीर मोहम्मद हमदानी जो सुल्तान सिकंदर के शासनकाल में सन् 1394 में कश्मीर आया, के बाल्तीस्तान आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। सन् 1405 में कश्मीर के सुल्तान सिकंदर ने बाल्तीस्तान पर कब्ज़ा कर लिया, वहाँ के बौद्धों का निष्ठुरता से धर्मांतरण कराया और अनेक मठों को नष्ट कर दिया परन्तु बौद्ध धर्म वहाँ तब भी जीवित रहा।

दरअसल, बाल्तीस्तान में धर्मांतरण की लहर को रफ़्तार देने वाला सैयद मो. हम्मद नूरबख़्श था, जो आमिर का अनुयायी और उसकी बेटी के घराने से उसका पोता था। शायद पंद्रहवीं शताब्दी के चौथे दशक में वह आया और उसे आमिर सैयद अली हमदानी जैसा ही सम्मान प्राप्त था। मोहम्मद नूरबख़्श ने क्रमशः स्कर्दू, शिगर एवं खपलू की यात्रा की और वहाँ के शासकों का धर्मांतरण कराने में सफल रहा जिससे प्रजा के धर्मांतरण का कार्य सरल हो गया। बौद्ध धर्म की ह्रासोन्मुख स्थिति के कारण यह कार्य और भी आसानी से होने लगा। मोहम्मद नूरबख़्श ने संभवतः पुरीग या वर्तमान कारगिल ज़िले में क़दम रखा और सोद, चिकतन और पश्क्युम को भी इस्लाम के प्रभाव के भीतर ले आया। माना जाता है कि अपने अभियान के समापन पर नूरबख़्श तुर्किस्तान लौट गया।

मोहम्मद नूरबख़्श के तीन दशक बाद, मीर शम्सुद्दीन इराक़ी नामक एक व्यक्ति बाल्तीस्तान के धार्मिक पटल पर उभरा। उसने कश्मीर और बाल्तीस्तान में इस्लाम के शिया मत के सिद्धांतों का प्रचार किया। वह खुरासान से सन् 1487 में सुल्तान हसन शाह के शासनकाल में कश्मीर आया परन्तु थोड़े समय बाद सन् 1495 में अपने देश लौट गया, जहाँ कुछ समय बिताकर वह दोबारा कश्मीर आया। इस बार उसने अपने अनुयायी बाबा अली नाजर की सहायता से खुलकर शिया मत

का प्रचार किया। जब सुल्तान सैयद मोहम्मद बेलिन्की के कट्टर सुन्नी प्रधान मंत्री को यह बात पता चली तो उसने मीर को कश्मीर से निकलवा दिया। मीर बाल्तीस्तान भी गया जहाँ उसने स्कर्दू, शिगर और खपलू के राजाओं का धर्मांतरण कराया जिससे भारी संख्या में लोगों का भी धर्मांतरण हुआ।

द्रास से फोतुला तक का क्षेत्र हमेशा घुसपैठ और धर्मांतरण की दृष्टि से कमज़ोर रहा है। इस्लामी धर्मांतरण संभवतः स्वैच्छिक न होकर हर बार बलकृत ही रहा होगा। जबकि चिकतन के शासकों ने लद्दाखी शासकों के प्रभाव से मुक्त होने के लिए इस्लाम को अंगीकार किया होगा परन्तु आज से कुछ समय पहले तक भी चिकतन के लोग अपनी पुरानी जीवन शैली के अनुसार ही चलते थे। यहाँ तक कि उनकी सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाएँ इस्लाम के नियमों से मेल ही नहीं खाती थीं। कारगिल के बाल्ती शिया वर्ग के हैं जो दरद और मंगोली प्रजातियों के सम्मिश्रण के परिणाम हैं और जिनपर अग़ाह नामक धार्मिक प्रधानों का पर्याप्त प्रभाव रहता है। आग़ाह के द्वारा उन्हें धर्म के अतिनैतिक रूप के विषय में बताया जाता है जहाँ आमोद-प्रमोद, दिल्लगी, ठिठोली, पोलो सरीखे खेल एवं नाच-गाने के लिए कोई स्थान नहीं होता। ये अग़ाह आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए अरब के बदले ईरान की ओर देखते हैं। लद्दाख की बौद्ध महिलाओं के विपरीत कारगिल की शिया महिलाएँ एकाकी और पुरुषों के द्वारा पूर्ण रूप से शासित जीवन जीती हैं। जहाँ बौद्ध महिलाएँ स्वतंत्र एवं खुला जीवन जीती हैं वहीं शिया महिलाओं को इसका अनुभव नहीं के बराबर होता है। लेह के सुन्नी मुसलमानों के अस्तित्व के अनेक मूल स्रोत हैं। इनमें से अधिकतर यारकंद और कश्मीर से आए मुस्लिम व्यापारियों के वंशज हैं।[28] सत्रहवीं शताब्दी में राजा जमयङ् नमग्यल ने कश्मीर के मुस्लिम सौदागरों को लद्दाख में आकर बसने के लिए आमंत्रित किया। शाही निमंत्रण के चलते उन्हें विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। इसी प्रकार राजा के निमंत्रण पर एक कश्मीरी ख़्वाजा भी लद्दाख में कश्मीर के मुग़ल मनसबदार से राजा के फ़ारसी पत्र-व्यवहार में उसकी सहायता करने के लिए आकर बस गया। अनेक मुस्लिम अप्रवासियों ने स्थानीय महिलाओं से विवाह कर लिया जिनके वंशज अरगोन नाम से जाने जाते हैं। यह

[28] John Bray- Ladakh History and Indian Nationhood.

मिश्रित सुन्नी समुदाय हालाँकि संख्या में कम है परन्तु अपनी कारोबारी पृष्ठभूमि और इसके परिणामस्वरूप आई समृद्धि के चलते वे पर्याप्त प्रभावशाली हैं। उनकी जीवन शैली हालाँकि उनके पड़ोसी बौद्ध समुदाय से विशेष भिन्न नहीं है। लेह ज़िले का छुशोद गाँव बल्तियों से आबाद है जो 360 साल पहले यहाँ आकर बस गए थे। ये लोग शिया वर्ग के हैं, परन्तु बाल्ती शिया के विपरीत, ये लोग जीवन के प्रति सकारात्मक हैं और अपने बौद्ध पड़ोसियों की तरह जीवन का भोग करते हैं हालाँकि इनमें से बहुत लोग अपने धर्म के कट्टर नियमों का ही पालन करते हैं। लद्दाख के सामाजिक जीवन की विशेषता है यहाँ के तीनों समुदायों के बीच समन्वय और बन्धुत्व भाव का होना जिसमें कुछ तनावों का होना तो स्वाभाविक है।

ईसाई धर्म

मोरावियन मिशनरियों ने सन् 1885 में लेह में और सन् 1899 में खलत्से में मिशन स्थापित किए। लेह में सन् 1889 से सन् 1896 तक मिल-हिल मिशन द्वारा प्रवर्तित एक रोमन कैथोलिक मिशन चला। लद्दाख की यात्रा करने वाले पहले ईसाई मिशनरियों में *जेसुइट एज़ाविदो, ओलवेरा* एवं *देसिदेरी* थे जो सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में आए परन्तु उनके आने से यहाँ के लोगों के जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरी तरफ़ मोरावियन मिशन कुछ हद तक धर्मांतरण कराने में सफल हुआ जिसके परिणामस्वरूप आज लेह और आसपास के क्षेत्रों में ईसाई धर्म को मानने वाले कोई 150 परिवार हैं।

लद्दाख में ईसाई धर्म की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ इस धर्म को ग़रीब एवं पिछड़े वर्गों के द्वारा नहीं अपनाया गया, बल्कि यह धर्म यहाँ के सामाजिक अभिजातवर्ग के सदस्यों को भा गया जिससे समय बीतने के साथ इस लघु संगठित एवं शिक्षित समुदाय को एक भिन्न सामाजिक पहचान मिल गई। परन्तु ईसाइयों ने अपने कुछ मूल सांस्कृतिक मूल्यों को अबतक कायम रखा है। जैसे, वेशभूषा, जो उन्हें उन बौद्ध समुदाय के लोगों से अभिन्न कर देते हैं, जो उनके मूल समधर्मी थे। पश्चिमी शिक्षा के अवसर प्राप्त करने वाले ये पहले लोग थे, जो उनकी उन्नत स्थिति और उच्च शिक्षित स्तर के कारण

हैं।

बौद्व धर्म

लद्दाख में बौद्ध धर्म के आगमन के विषय में भिन्न मत प्रचलित हैं। *कनिंघम* के अनुसार सम्राट अशोक के शासनकाल के समय 243 ई. पू. में बौद्ध धर्म कश्मीर से होकर लद्दाख पहुँचा और सुरु घाटी में अशोक के शासनकाल में पहला बौद्ध मठ स्थापित किया गया। सुमदा और तीरी गाँवों में आज भी पत्थर से बने प्राचीन स्तूप हैं जिनके निर्माण का श्रेय सम्राट अशोक को दिया जाता है। ज़ांग्स्कर के सानी गाँव के कनिका स्तूप को सम्राट अशोक के प्रार्थना स्वरूप अस्तित्व में आया माना जाता है[29] परन्तु कुछ लोगों ने इस स्तूप के निर्माण के साथ द्वितीय शताब्दी के राजा कनिष्क को जोड़ा है। यह माना जाता है कि उन्होंने अपने विस्तृत साम्राज्य में लद्दाख और बाल्तीस्तान को भी मिला लिया था। *लुचिआनो पेटेक* का मानना है कि बौद्ध धर्म कुशान काल में कश्मीर से होकर लद्दाख आया और द्रास से कश्मीर की नज़दीकी के कारण कश्मीर का प्रभाव लंबे समय तक बना रहा जैसा कि वहाँ विद्यमान मैत्रेय एवं अवलोकितेश्वर की भव्य प्रतिमाओं से प्रमाणित है। *पेटेक* का मत है कि द्रास, पुरीग (वर्तमान कारगिल क्षेत्र) और खलत्से पर कश्मीर का बौद्ध प्रभाव होने के बावजूद 1000 ईस्वी तक लद्दाख वास्तव में बौद्ध धर्म के प्रभाव में नहीं आया था।[30]

परन्तु लद्दाख में बौद्ध धर्म के आने से पहले, साकिन पशु लद्दाख के प्राचीन टोटेमवादी पूजापद्धति का एक पवित्र चिह्न था। यहाँ की एक प्रसिद्ध किंवद. न्ती के अनुसार, बुद्ध का एक अवतार साकिन था, इसलिए इस जीव की ओर श्रद्धा भाव रखा जाता है। जैसा कि सर्वविदित है, बौद्ध धर्म के विस्तार में सम्राट अशोक की प्रमुख भूमिका रही है। धर्म के प्रचार के माध्यमों की परिचर्चा के लिए हुए तृतीय बौद्ध महासभा के बाद सम्राट अशोक ने बुद्ध के प्रवचनों को लद्दाख समेत पड़ोसी देशों में फैलाने का कोई अवसर नहीं गवाँया। ईस्वी सन् 78 से आरंभ हुए कनिष्क

---

29 Nawang Tsering Shakspo, An Insight into Ladakh.

30 Luciano Petech, The Kingdom of Ladakh.

के शासन के दौरान लद्दाख में बौद्ध धर्म की जड़ें और मज़बूत होती चली गईं। कनिष्क ने पेशावर और मथुरा में अनेक स्तूपों का निर्माण कराया। इसके अलावा ईसाई युग के आरंभ होने के आसपास चीन में भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए मिशन भेजे। उसने कश्मीर के कुण्डलवन में बौद्ध धर्म के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए चतुर्थ बौद्ध महासभा का आयोजन किया। इस महासभा में नागार्जुन, अश्वघोष एवं वासुमित्र सरीखे प्रसिद्ध विद्वानों ने भाग लिया। कनिष्क के शासनकाल में बौद्ध धर्म हीनयान एवं महायान नामक दो वर्गों में विभाजित हो गया। इसके बाद लद्दाख ल्हासा के धार्मिक प्रभाव के भीतर आ गया।

प्रख्यात बौद्ध धार्मिक नेता पद्मसंभव जो उरग्यन रिन्पोछे के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, आठवीं शताब्दी में लद्दाख आए थे जैसा कि सकटी के पास स्थित उरग्यन चट्टान से प्रमाणित होता है। इस पूरे क्षेत्र में चट्टानों पर उनके देह के, कृपाण के और पद के चिह्न विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त शांतरक्षित और तिब्बती सम्राट ठीस्रोङ् देत्सन भी लद्दाख में बौद्व धर्म के अग्रणी माने जाते हैं।

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रारंभ, वे भीषण वैप्लविक घटनाएँ थीं जिनके कारण नवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ और बाद के पुनरुत्थान और समेकन का संक्षिप्त वर्णन यहाँ लाभप्रद होगा। तिब्बत में बौद्ध धर्म सातवीं शताब्दी में राजा सोङ्त्सेन गम्पो के शासनकाल में उसकी दोनों पत्नियों के साथ आया जिनमें से एक चीन की थी और दूसरी नेपाल की। दोनों रानियाँ धर्मपरायण बौद्ध थीं। इस राजा के शासन के समय अभिजात वर्ग और सामान्य जनता दोनों ही आरंभ में बौद्ध धर्म से प्रभावित नहीं हुई हालाँकि स्वयं राजा इस नए धर्म का उत्साही समर्थक था और इसलिए बौद्ध धर्म को अपना लिया। राजा की मृत्यु के बाद, बौद्ध धर्म को एक गहरा धक्का लगा और प्रजा, जो तब अपने पिछले बोन धर्म के प्रभाव में थी, अपने देश पर आई विपदाओं के लिए नए धर्म को उत्तरदायी मानने लगी। परन्तु ठीस्रोङ् देत्सन (719-780 ईस्वी) जो कि पाँचवाँ उत्तराधिकारी और बौद्ध धर्म का एक उत्साही समर्थक था, ने धर्म को इस प्रकार की अस्थिर स्थिति में देखकर उसे वापस सही मार्ग पर लाने के लिए कदम उठाए। राजा ने भारत से बौद्ध धर्म के पवित्र ग्रंथों को तिब्बत लाने के लिए और तिब्बतियों द्वारा खनपो बोधिसत्त्व कहलाने वाले आचार्य

शांतरक्षित को तिब्बत आमंत्रित करने के लिए एक प्रतिनिधि मंडल भेजा। आचार्य से इस मंडल की भेंट नेपाल में 724 ईस्वी में हुई और उन्होंने आचार्य से उनके साथ तिब्बत चलने की याचना की। दुर्भाग्यवश तिब्बत में एक महामारी फैल गई जिसका दोष नए धर्म को दिया गया। इसके अतिरिक्त आचार्य भी लोगों को प्रभावित कर पाने में असफल रहे हालाँकि स्वयं राजा इनकी उपस्थिति से बहुत प्रभावित हुआ। अंततः क्रोधित होकर आचार्य तिब्बत से चले गए परन्तु राजा की प्रार्थनाओं से विवश होकर दो वर्ष बाद उन्हें वापस आना पड़ा। बोन पुरोहितों के अभिचार का सामने करने के लिए उन्होंने राजा को पद्मसंभव (कमल से उत्पन्न) को बुलाने का परामर्श दिया, जो उड़ीसा के राजघराने के वंशज थे[17] और तंत्रविद्या में दक्ष, अलौकिक शक्तियों से संपन्न थे। पद्मसंभव ने तिब्बत आकर बोन मायावियों को परास्त किया और बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए अहितकर आत्माओं को वश में किया। बौद्ध धर्म को उनके अमूल्य योगदान के कारण बौद्ध धर्मतंत्र में उन्हें अत्यंत श्रद्धा एवं भक्ति से देखा जाता है और तिब्बत एवं लद्दाख के हर मठ में उनकी प्रतिमा का विशेष स्थान होता है। आचार्य शांतरक्षित एवं पद्मसंभव ने मिलकर ल्हासा के पास सामये मठ की स्थापना की, जिसके पूरा होने में बारह वर्ष (729-829 ईस्वी) लगे। आचार्य को संस्कृत के अनेक दार्शनिक ग्रंथों का तिब्बती में अनुवाद करने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने स्वयं भी अनेक ग्रंथ लिखे और सौ वर्ष की दीर्घायु पाकर 750 ईस्वी में अपनी मृत्यु होने तक वे लेखन कार्य में व्यस्त रहे। बौद्ध धर्म को सुदृढ़ करते हुए पद्मसंभव ने काफ़ी संख्या में लोगों के ऊपर बोन धर्म का प्रभाव होने की बात को ध्यान में रखते हुए नए धार्मिक विधान में बोन धर्म की कुछ प्रथाओं, देवों एवं विश्वा. सों को स्थान दिया जिनके कारण बोन धर्म अपनी प्रसिद्धि के साथ कुछ समय और चलता रहा। उस समय तिब्बती भाषा की कोई लिपि नहीं थी और इसका निर्माण करने के लिए राजा ने अपने विश्वासी मंत्री थोनमी सम्भोट के नेतृत्व में एक प्रति. निधि मंडल को भारत भेजा। भारत में लगभग एक दशक बीताने के बाद यह मंडल देवनागरी लिपि पर आधारित एक नई लिपि के साथ तिब्बत लौटा। सम्भोट ने पाणिनि के संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के आधार पर इस नई लिपि के लिए व्याकरण का भी निर्माण किया। पाणिनी व्याकरण भाषा के सटीक प्रयोग के लिए सबसे श्रेष्ठ

माना जाता है। चीन, नेपाल एवं कश्मीर के विद्वानों ने कला एवं धर्म संबंधी ग्रंथों का चीनी एवं संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद करने में अपना सहयोग दिया और इससे भी तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार में सहायता मिली।

समय बीतने के साथ बोन धर्म का बहुत ह्रास हुआ जिससे वह कभी उभर नहीं पाया और अंततः उसने लामावादी बौद्ध धर्म के आगे घुटने टेक दिए। बोन पुरोहितों ने न तो इस चोट के आगे हार मानी और न ही अपनी शक्तियों के हनन एवं पदवी के छिन जाने से ही हताश हुए। परन्तु 841 ईस्वी में बौद्ध धर्म को एक गहरा धक्का लगा जब तत्कालीन शासक रलपाचन की हत्या हो गई। इस कार्य में उसके छोटे भाई लङ् दरमा का हाथ था जिसकी नज़र सिंहासन पर थी। लङ् दरमा के केवल दो वर्ष के अल्प शासनकाल में बौद्ध धर्म बहुत बुरे समय से गुज़रा। यह शासक अपनी पूरी शक्ति के साथ देश को बौद्ध धर्म मुक्त करने के अभियान में जुट गया। इसके बाद अशांति का जो दौर चला उससे तिब्बत दो भागों में बँट गया और लङ् दरमा के पौत्र ठिक जुनागोन(Thik Junagon)[18] ने ङ्री में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और आगे चलकर लद्दाख के कुछ भागों पर भी अधिकार कर वहाँ तिब्बती शाखा के बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र था जिसने इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म को सुदृढ़ किया। लङ् दरमा के निष्ठुर अत्याचारों से हालाँकि बौद्ध धर्म को गहरा धक्का लगा परन्तु 'इससे बौद्ध धर्म का आत्यंतिक रूप से खात्मा नहीं हुआ' जैसा कि आधिकारिक इतिहास से लग सकता है। विभिन्न लक्षणों से पता चलता है कि बौद्ध धर्म अंगारों के नीचे बचा हुआ था, जो छोटी-सी चिंगारी पाकर भी पुनः जीवित हो सकता था...''[31] लङ् दरमा द्वारा किए गए अत्याचारों में मठों का अपवित्रीकरण, पवित्र ग्रंथों का विनाश एवं भिक्षुओं की हत्या आदि शामिल थे, जिससे अधिकतर भिक्षु मध्य एशिया में शरण लेने को विवश हो गए। तिब्बती इतिहास का निस्संदेह यह पहला अंधायुग था जो सत्तर वर्षों या कदाचित् इस पूरी शताब्दी तक जारी रहा। इसके अनेक परिणामों में से एक यह हुआ कि तिब्बत एवं भारत देश के बौद्ध संबंध के बीच आदान-प्रदान में रुकावट

---

31 Jean Naudeo, Buddhists of Kashmir

आई। परन्तु लङ् दरमा को अपनी दुष्टता का मूल्य पलगी दोर्जे नामक लामा के हाथों 842 ईस्वी में अपने प्राण गँवाकर चुकाना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप तिब्बत में गृहयुद्ध छिड़ गया जिससे पूरा देश अशांति एवं अनिश्चय में डूब गया। इस खलबली के चलते तिब्बती राजसत्ता ने बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान एवं विस्तार में विशेष रुचि दिखाई जिसमें तिब्बती विद्वानों के द्वारा भारत जाकर बौद्ध ग्रंथों का अवलोकन करना एवं उनका तिब्बती में अनुवाद करना आदि शामिल था। इन यात्राओं के बदले भारतीय विद्वान भी तिब्बत आए और विद्वानों के इस पारस्परिक आदान-प्रदान से तिब्बत एवं लद्दाख के लोगों को भारतीय बौद्धों की जीवनशैली को आत्मसात् करने में सहायता मिली और बौद्ध धर्म की तंत्रवाद शाखा के विस्तार में भी सहयोग मिला। भारतीय बौद्ध विद्वानों के आने से बौद्ध धर्म को अंगीकार करने वाले नए अनुयायियों को बौद्ध दर्शन का ज्ञान प्राप्त हुआ और बारहवीं शताब्दी के आते-आते भारत एवं तिब्बत के बीच घनिष्ठ संबंधों का आदान-प्रदान संभव हो सका जिससे बौद्ध धर्म की तंत्रवादी शाखा का विकास हुआ एवं समय बीतने के साथ तिब्बती लोग बौद्ध धर्म को अपना धर्म स्वीकार करने लगे। इनकी सोच में यह अंतर धीरे-धीरे उच्च लामाओं के प्रभुत्व को आगे ले आना था और जिन भिन्न पंथों की स्थापना हुई थी, चौदहवीं शताब्दी से वे तिब्बत में धार्मिक एवं राजनैतिक शक्तियों के स्रोत बन गए। ये पंथ तिब्बत की तरह लद्दाख में आज भी विद्यामान हैं।

राजा यीशेस ओद की बौद्ध धर्म को प्रबल करने की तीव्र इच्छा थी इसलिए उन्होंने इस दिशा में कदम उठाते हुए 21 होनहार तिब्बती युवकों को बौद्ध धर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त कराने के लिए कश्मीर भेजा परन्तु दुर्भाग्यवश उनमें से केवल दो ही जीवित तिब्बत लौटे जिससे राजा को गहरा दुःख पहुँचा। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए उसने कुछ व्यक्तियों को विक्रमशिला पण्डित दीपंकर श्रीज्ञान (अतिश) से तिब्बत आने और बौद्ध धर्म को प्रबल करने में सहायता करने के लिए अनुरोध करने हेतु भेजा। पहले तो आचार्य ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया परन्तु चङ्छुब ओद के राजा बनने पर उन्हें फिर से प्रस्ताव भेजा गया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। तिब्बत में अपने 14 वर्ष के प्रवास के दौरान आचार्य ने विपुल मात्रा में अनुवाद कार्य किए और कई ग्रंथ भी लिखे। उनके द्वारा किए गए कार्य का एक बड़ा भाग कांग्युर

एवं तांग्युर में प्राप्त होता है जिसका अनुवाद लोत्सवों द्वारा किया गया।

तिब्बत के धार्मिक पटल पर चौदहवीं शताब्दी के मध्य में महान सुधारक त्सोङ्खापा का आगमन हुआ। उनका जन्म सन् 1375 में हुआ और सन् 1419 में उनकी मृत्यु हुई। तिब्बती शाखा के बौद्ध धर्मतंत्र में उन्हें उच्च आदर प्राप्त है और उन्हें अमिताभ बुद्ध का अवतार माना जाता है हालाँकि बहुत लोग उन्हें मंजुश्री का अवतार भी मानते हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म के गोलुक्स पा या पीत संप्रदाय की स्थापना की जिसके दलाई लामा समर्थक हैं, जिनका औपचारिक आसन ल्हासा में स्थित है। पंचेन लामा भी इसी संप्रदाय को मानते हैं। उनका केन्द्र टाशीलुन्पो है।

ये बात रोचक लगती है कि लङ् दरमा के अत्याचार के समय भी बौद्ध धर्म तिब्बत में एक रहस्यमयी ढंग से जीवित रहा। धार्मिक ग्रंथों के अनुवादों को कुछ साधारण परन्तु निष्ठावान नागरिकों द्वारा सुरक्षित ढंग से छुपाकर रखा गया था परन्तु इस विषय में विस्तार से जानकारी नहीं मिलती। फिर भी इस बात का निश्चित तौर पर अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी संघटित धार्मिक संस्था का इन ग्रंथों की सुरक्षा के विषय में कोई नियंत्रण न होने के कारण धार्मिक ग्रंथों की शुद्धता को गंभीर हानि पहुँची होगी। फिर भी लङ् दरमा के पौत्र न्यीमागोन के शासनकाल में द्वितीय प्रचार जिसे तिब्बत के लोग 'धर्म का पवित्र प्रचार' या 'छो दर' कहते हैं, का प्रवर्तन हुआ। 1000 ईस्वी सन् के आसपास से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के पूरे काल में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक क्रियाएँ होती रहीं।

न्यीमागोन के पोत्र 'यिशेस ओद' के पुरोहिताभिषेक की घटना का *जी. तुची* इन शब्दों में वर्णन करते हैं, 'राज्य की आत्मा यिशेस ओद ही रहा।'' धर्म के पुनरुत्थान में रिनचेन जङ्पो का सहयोग महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उनके द्वारा किए गए अनेक महान कार्यों में से एक है कश्मीर से अनेक कुशल कारीगरों को लद्दाख लाना, काष्ठशिल्प में जिनकी कुशलता का प्रमाण रिन्चेन ज़ङ्पो से जुड़े लद्दाख के 108 मठों में से अनेक मठों में मिलते हैं। रिन्छेन ज़ङ्पो से जुड़े प्रमुख मठों में आलची, मङ्ग्यू और सुमदा आते हैं जिनमें ध्यानी बुद्ध (पाँच स्वर्गीय बुद्ध) की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। अन्य चार प्रतिमाएँ अक्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ और अमोघ

सिद्ध के हैं।[19]

तिब्बती शाखा के बौद्ध धर्म की विशेषताएँ

बौद्ध धर्म की तिब्बती शाखा कांग्युर में प्राप्त होती है जिसे 'नियमों का स्पष्टीकरण भी कह सकते हैं। इसमें त्रिपिटक अर्थात् बौद्ध सिद्धांतों के तीन महान अंग 'विनय', 'सूत्र' एवं 'अभिधर्म' के अनुवाद विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध विजयी कहलाते हैं। बौद्ध त्रिसंयुज को त्रियाय अर्थात् तीन रत्न या तीन सर्वोच्च तत्त्व कहा जाता है जोकि बुद्ध, धर्म एवं संघ हैं। बुद्ध को सङ्ग्यस कोनछोग या परम बुद्धि, धर्म को छोस कोनछोग या परम नियम एवं संघ को गेदुन कोनछोग या परम संघ कहा जाता है।

कई बौद्ध सिद्धांत जटिल एवं समझने में कठिन होते हैं परन्तु बौद्ध धर्म के विभिन्न प्रकारों का मूल मत है ज्ञानोदय की अवस्था को पाकर निर्वाण या बुद्धत्व प्राप्त कर पाने की प्रत्येक मनुष्य की क्षमता। बौद्ध धर्म की महायान शाखा में करुणा के अधिस्वर की विशेषता है जहाँ कोई ज्ञानसंपन्न आत्मा केवल अपने ज्ञानोदय के लिए कार्य नहीं करेगा, जबकि अन्य आत्माएँ निरंतर दुःख भोगती हुई जन्म मरण के चक्र में फँसी हुई हैं। अतः एक ज्ञानसंपन्न आत्मा अपने निर्वाण का अवसर त्यागकर बार-बार संसार में मनुष्य को दुःख से मुक्ति दिलाने के उददे्श्य से लौटेगा। इस केन्द्रिय सिद्धांत ने ही बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों के एक जटिल तन्त्र को जन्म दिया। शाक्यमुनि बुद्ध चार हज़ार बुद्धों में से चौथे बुद्ध माने जाते हैं। बुद्धत्व के सिद्धांत का स्थान धीरे-धीरे पाँच बुद्ध या ध्यानी बुद्धों ने ले लिया। वज्रयान शाखा का विकास होने के साथ-साथ हिंदू धर्म के कुछ तांत्रिक तत्त्व भी अपना लिए गए जिसके अंतर्गत स्त्री-तत्त्व का पुरुष-तत्त्व से संबंध एवं समेकन ने एक तंत्रविशेष का रूप ले लिया, जहाँ स्त्री-शक्तियों का पाँच बुद्धों से संबंध दर्शाया जाता है। इससे बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों, देवताओं एवं देवियों, विश्वासों एवं प्रथाओं, चमत्कारों एवं रहस्यों का एक जटिल तंत्र बन गया जिसमें अंततः समग्र ब्रह्माण्ड एवं अपनी संपूर्णता में मानव शरीर– देह, आत्मा, इंद्रिया, मन, भावनाएँ आदि सम्मिलित हो जाती हैं। कदाचित् इससे यह बात समझी जा सकती है कि क्यों बहुत सारे साधारण बौद्ध अनुयायी

अपने धर्म की जटिलता से अनभिज्ञ हैं और केवल ऊपरी विश्वास के यान्त्रिक एवं अबोध अनुपालन से ही संतुष्ट रहते हैं।

पंथ

बौद्ध धर्म के द्वितीय प्रचार के आने से तिब्बत एवं लद्दाख में धर्मचक्र तेज़ी से घूमने लगा। समय बीतने के साथ तिब्बती शाखा के बौद्ध धर्म के लामा कई पंथों के अंतर्गत विभाजित हो गए, जिनमें से छः पंथ लद्दाख में भी विद्यमान हैं। साधारण तौर पर हम लाल या पीत पंथ के बारे में सुनते हैं। लामाओं के धार्मिक टोप लाल या पीत रंग के हो सकते हैं परंतु सारे लामा लाल या ईंट के रंग का चोगा धारण करते हैं। केवल गेलुक्स पा पंथ के लामा पीली टोपी धारण करते हैं, वह भी केवल आनुष्ठानिक अवसरों पर। ञीड्मा पा पंथ पद्मसंभव के शिक्षण पर आधारित लाल वर्ग का सबसे प्राचीन पंथ है। पद्मसंभव भारतीय संतों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। बौद्ध प्रवचनों को आठवीं शताब्दी में भारत से तिब्बत तक पहुँचाने में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई थी। वे ध्यानी बुद्ध अमिताभ के अवतार माने जाते हैं। ञीड्मा पा पंथ एकांकी तप में विश्वास करता है और लद्दाख में केवल डकथोक मठ इस पंथ का प्रतिनिधित्व करता है। कर्ग्युद पा या मौखिक परंपरा का पंथ तिलोपा एवं उनके शिष्य नारोपा सरीखे प्राचीन भारतीय सिद्धों की शिक्षा पर आधारित है। नारोपा एक कश्मीरी योगी थे जिनके शिष्य मारपा ने ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में धर्म के सिद्धांतों को तिब्बत पहुँचाया। मारपा के उत्तराधिकारी मीला रसपा (मिलारेपा) थे जिन्हें तिब्बती योगियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ड्रीगुड् पा पंथ के प्रतिनिधि मठ लामायुरु एवं फ्याङ् हैं। माना जाता है कि लामायुरु मठ के लिए नारोपा (956-1040 ईस्वी) ने उपयुक्त स्थान का चयन किया था, जिसके लिए उन्होंने एक झील को सुखाकर इस स्थान को सुगम बनाया। ड्रुकपा पंथ को लद्दाख के राजाओं का संरक्षण मिलता रहा और अन्ले, हेमिस, ल्चेमरे एवं स्तकना मठ इस पंथ का प्रति. निधित्व करते हैं। इन मठों की स्थापना राजा सिंगे नमग्यल के शासनकाल के आसपास की गई थी। कालांतर में यह पंथ लद्दाख का प्रमुख बौद्ध पंथ बन गया परन्तु राजसत्ता ने इसे भूटान की तरह लद्दाख पर पूर्ण अधिकार नहीं करने दिया। अंतिम महत्त्वपूर्ण लाल टोप पंथ है– सस्क्या पा पंथ, जो गयारहवीं शताब्दी में तिब्बत

पहुँचा। लद्दाख में इस पंथ का प्रतिनिधित्व माठो मठ करता है। अंत में गेलुक्स पा अर्थात् पुनर्गठित पीत पंथ आया जिसे 1400 ईस्वी के आसपास त्सोङ्खापा तिब्बत ले आए। यह पंथ कदम पा एवं अतिश के उपदेशों के आधार पर निर्मित है। लाल पंथ के भिक्षुओं में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण त्सोङ्खापा पतन को छूते इन भिक्षुओं के आचरण को उनके लिए निर्धारित विनय नियम या आचार संहिता के तहत सुधारने के लिए गेलुक्स पा पंथ की स्थापना करने को तत्पर हुए। *तूची* के अनुसार यह पंथ ''प्रगतिशील चिंतन में विश्वास करता है जो दो अनुपूरक रीतियों का प्रयोग करता है– प्रबोधक विश्लेषण एवं संकल्पित ढंग से मन को स्थिर करना''। इस पंथ के समर्थक यह भी विश्वास करते हैं कि बुद्ध के प्रवचनों का पूर्ण रूप से अनुगमन करने से जीवन एवं मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाती है जोकि कोई तांत्रिक विद्या नहीं कर सकती। यह नया पंथ पंद्रहवीं शताब्दी में लद्दाख पहुँचा और स्पीतुक मठ इस पंथ को अपनाने वाला पहला मठ बना जिसके बाद ठिगसे एवं लिकिर मठ के द्वारा भी इसे अपनाया गया। शताब्दी के दूसरे चरण में लद्दाख में गेलुक्स पा पंथ का प्रभुत्व कायम हो गया जो इसके तिब्बत स्थित प्रमुख केन्द्र की सहायता से एक शताब्दी से भी अधिक बना रहा। इसके अतिरिक्त लद्दाख में राजतंत्र के पतन के बाद इस पंथ का प्रभुत्व और बढ़ गया। इस पंथ के स्थापक त्सोङ्खापा को अमिताभ बुद्ध का अवतार माना जाता है। कुछ लोग इन्हें मंजुश्री का अवतार मानते हैं। दलाई लामा, जिन्हें ग्लावा रिन्पोछे अर्थात् तेजस्वी रत्न कहा जाता है ओर पंचेन लामा अर्थात् 'ज्ञान रत्न' दोनों ही गोलुक्स पा पंथ से जुड़े हुए हैं।

गोन्पा

गोन्पा का अर्थ है एक एकांत स्थान जैसा कि शाक्यमुनि बुद्ध ने विचार किया था। कुछ गोन्पाएँ आदर्शतः एकांत में स्थित है जैसे रिजोङ् एवं हेमिस गोन्पा जबकि अन्य अनेक गोन्पाएँ साधारण तौर पर नीचे स्थित मानव आबादी पर निगरानी करते से गाँव के ऊपर किसी टीले पर स्थित होती हैं। गोन्पाएँ बुद्ध के द्वारा बनाए गए संघ अर्थात् भिक्षुओं के भ्रातृसंघ की शाखाएँ हैं। परंपरागत तौर पर प्रत्येक गोन्पा में एक निश्चित संख्या में भिक्षुओं को रखा जाता था। प्राचीन तिब्बत के प्रमुख मठों जैसे सेरा, ड्रिपुङ्, गलदन एवं टाशीलुन्पो में क्रमशः 5500, 7700, 3300 एवं 5500 भिक्षु

हुआ करते थे। इसकी तुलना में लद्दाख के प्रमुख मठों में भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है जैसा कि निम्नलिखित तालिका से ज्ञात होता है।[32][20]

मठ का नाम	मठ से सं. बंधित लामाओं की संख्या	कुल संख्या का प्रतिशत	मठों से संबंधित कुल गाँव	कुल संख्या का प्रतिशत	मठ अधिकृत भूमि का क्षेत्रफल	कुल संख्या का प्रतिशत
हेमिस	390	21.78	100	44.64	1998.3	33.54
लिकिर	180	13.06	25	11.16	1307.8	21.80
ठिगसे	120	8.70	10	8.08	263.3	4.38
फ्याङ्	115	8.34	14	6.25	360.0	6.00
स्पीतुक	160	11.61	13	5.80	375.8	6.25
लामायुरु	198	14.36	16	7.14	234.5	3.91
रिज़ोङ्	100	7.25	19	8.48	496.4	8.28
स्तकना	70	5.07	12	5.35	516.7	8.62
माठो	75	5.44	5	2.26	400.0	6.67
डगथोक	60	5.17	2	0.89	40.3	0.55
कुल	1378	100.00	224	100.00	5993.1	100.00

कुछ गोन्पा वास्तुकला के दुर्लभ उदाहरण हैं, जिनकी संरचना विशाल है और एक के ऊपर एक करके सात या आठ मंजिल तक के भी हैं जिसमें कुशोक का निजी कक्ष एकांत एवं न्यूनतम हस्तक्षेप के लिए सबसे ऊपरी मंज़िल में बना होता है। मठ के अनेक छोटे-छोटे कमरों को अंधेरी सीढ़ियाँ एवं गलियारे जोड़ती हैं। प्रांगण में

32 Shidhar Kaul & H.N. Kaul, Ladakh Through the Ages: Towards a New Identity, p-127

आती रोशनी की धार इन बंद इमारतों में व्याप्त उदासी और अंधेरे को काफ़ी हद तक दूर करती है। परन्तु गोन्पा को देखने वाला इसकी विशालता और वास्तुकला के वैभव से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। गोन्पाओं की दीवारें भित्तिचित्रों से सुसज्जित होती हैं जो मिथकीय तथ्यों के प्रतीक हैं। गोन्पा के दुखङ् या मुख्य देवालय के बरामदे चारों दिशाओं के मिथकीय देवों के चित्र एवं संसार चक्र या भव-चक्र के चित्र से सुसज्जित होते हैं।

गोन्पा का एक कक्ष पुस्तकालय होता है जहाँ निर्बन्ध ग्रंथ रखे होते हैं। इन ग्रंथों के पृष्ठों की लंबाई लगभग एक फुट एवं चौड़ाई चार इंच होती है। खुले पृष्ठों वाले ये ग्रंथ लकड़ी के दो तख़्तों के बीच रखे होते हैं और रेशमी कपड़े से आच्छादित होते हैं। हर गोन्पा में त्रिपिटक के तिब्बती रूपांतर कांग्युर एवं तांग्युर का होना आवश्यक होता है। गोन्पा के प्रमुख पूजाघर या दुखङ् में भगवान बुद्ध, मैत्रेय बुद्ध या आगामी बुद्ध एवं अन्य देवों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होती हैं। इस कक्ष की दीवारें बुद्ध के अनेक जन्मों की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को भित्तिचित्रों के माध्यम से दर्शाती हैं और अन्य कई भित्तिचित्र गहन आशय वाले दार्शनिक सिद्धांतों को दर्शाते हैं। इस देवालय के बरामदे की दीवारों पर चार दिशाओं के देवों एवं काल-चक्र के चित्र बने होते हैं। ये चित्र गोन्पा की सुन्दरता को बढ़ाते हैं ओर ये महत्त्वपूर्ण देवालयों के प्रमुख द्वार की रक्षा करने के प्रतीक हैं। काल-चक्र या समय चक्र संसार के अस्तित्व के चक्र को दर्शाता है[21] जिसका सामना हर जीव को तब तक करना पड़ता है जब तक वे निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेते अर्थात् जीवन मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो जाते। काल-चक्र के तीन संकेंद्री चक्रों में सबसे भीतरी चक्र तीन नैतिक दोषों मोह, लोभ एवं घृणा को एक पक्षी, गिद्व एवं सर्प के रूप में चित्रित करता है। यह तीनों जीव एक दूसरे की पूंछ को अपने मुँह में दबोचे हुए दिखाए गए हैं जिनसे एक अटूट चक्र का निर्माण हो जाता है और यह इन तीनों विकारों के बीच विद्यमान कारण एवं परिणाम की अनंत शृंखला का प्रतीक है। इन तीनों चक्रों

में बीच वाला चक्र अस्तित्व की छः अवस्थाओं को दर्शाता है जो निम्नलिखित हैं।[33]

1. ल्हायुल

यह देवों का निवास स्थान है और इसे श्वेत रंग में और शांत एवं सौम्य स्वरूप में दर्शाया गया है।

2. ल्हामायिन युल

यह असुरों की भूमि है और इसे लाल रंग का दिखाया गया है। इसका स्वरूप विषम एवं बीभत्स है।

3. मियुल

यह मनुष्य लोक है। इसमें जन्म से मृत्यु तक मनुष्य जिन परिवर्तनों से गुज़रता है, उसका चित्रण है।

4. तुटोलोवी जिग्स्तेन (Tutolovi jiksten)[22]

यह पशुओं का संसार है जिसके दो भाग दर्शाए गए हैं– समुद्री भाग एवं भूमि भाग।

5. ईदग्स

धरती पर अपने जीवनकाल में कृपणता एवं स्वार्थ में जीने वालों का पुनर्जन्म इस लोक में होना माना जाता है। इन प्रेतों का गला संकीर्ण, हाथ पैर पतले एवं पेट फूला हुआ दर्शाया गया है। इनको कभी न तृप्त होने वाली प्यास एवं भूख की भीषण पीड़ा झेलनी पड़ती है।

6. न्यलवा

यह नरक लोक है जिसके दो भाग माने जाते हैं– गरम एवं ठंडा, जिन्हें आगे और आठ भागों में विभाजित किया गया है। यह कुकर्मियों का लोक है। इस लोक के भिन्न-भिन्न भागों में जीव अपने कुकर्मों के अनुसार कठोर दण्ड भोगते हैं।

---

33 Shridhar Kaul & H.N. Kaul, Ladakh Through the Ages: towards a new identity.

तिब्बत एवं लद्दाख की गोन्पाओं ने बहुत लंबे समय से सांस्कृतिक शिक्षणालयों की भूमिका निभाई है और इनके महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण ही लद्दाख में बौद्ध संस्कृति जीवित रही है, साथ ही बोधी भाषा की शिक्षा का अनुपात भी यहाँ काफ़ी ऊँचा रहा है। गोन्पाओं में धर्म, दर्शन, ज्योतिषशास्त्र, प्रारंभिक अंकगणित एवं चिकित्सा की देशज पद्धतियाँ आदि की शिक्षा दी जाती है। गोन्पाओं की सामूहिक सभा में धार्मिक ग्रंथों का पठन एक अधिकारी के निरीक्षण में होता है जिसे यह कार्य सौंपा गया होता है। लगभग प्रत्येक गोन्पा तिब्बत में बौद्ध धर्म के इतिहास की किसी महत्त्वपूर्ण घटना या लद्दाख की धार्मिक परंपरा से जुड़ी किसी आख्यान से संबद्ध कोई बड़ा उत्सव मनाता है।

लामा

बौद्ध त्रिरत्नों को तिब्बती में कोन-छ-कितुन(Kon-chh Kitun)[23] कहा जाता है जिसके अंतर्गत बुद्ध या परम बुद्धि, धर्म या परम नीति या प्रवचन एवं संघ या परम संघ आते हैं। संघ को बुद्ध ने अपने प्रवचनों के प्रचार के लिए स्थापित किया था, इसीलिए यह एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थान है। बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल में भक्त अपनी भक्ति को त्रिरत्न या बुद्ध, धर्म, संघ एवं बुद्ध के प्रमुख अनुयायियों तक ही सीमित रखते थे। वर्तमान काल में हालाँकि बुद्ध को बौद्ध धर्मतंत्र के महाधर्माधिकारी के तौर पर पूजा जाता है, परन्तु अन्य बोधिसत्त्वों जैसे पद्मपाणि, मंजुश्री एवं अवलोकितेश्वर आदि की भी समान श्रद्धा से आराधना होती है। बौद्ध धर्म को तिब्बत में जहाँ गहरी हानि पहुँची है वहीं लद्दाख में वह भारत के धर्मनिरपेक्ष आदर्शों के भीतर फल-फूल रहा है। लद्दाख एवं अन्य बौद्ध स्थानों में धर्म की जड़ों को सुदृढ़ बनाने में लामाओं का स्वाभाविक महत्त्व है जिस पर अधिक विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। लामाओं के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का निर्वाहन करना, विनय नियमों के अंतर्गत आचरण करना एवं बुद्ध के प्रवचनों के प्रसार के पवित्र कार्य में लगे रहना आवश्यक होता है। तिब्बत एवं लद्दाख के लामाओं को मुख्य तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन उनकी टोपों के रंग के आधार पर होता है। हीनयान लामाओं की टोप लाल रंग की होती है जबकि महायान वर्ग के लामाओं की टोप पीले रंग की। महायान शाखा के लामा मदिरा एवं

मांस का सेवन नहीं करते जबकि लाल वर्ग के लामा इन वर्जनाओं को नहीं मानते।[24] पीली टोप वाली शाखा को गेलुक्स पा अर्थात् सद्गुण का आदर्श कहा जाता है और मठवादी पंक्ति में अंतिम स्थान इसी का है।

अभिषेक

लद्दाख के बौद्ध अपने धर्म के प्रति अति निष्ठावान हैं और भगवान बुद्ध के प्रवचनों को जीवित रखने के लिए उनकी चिंता सच्ची है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, भिक्षुओं का संघ बौद्ध धर्मतंत्र का तीसरा रत्न है और गोन्पा या मठ इस रत्न को संभालने और सुरक्षित रखने वाली मंजूषा है। इसके अतिरिक्त बौद्ध जनसंख्या या सामाजिक एवं धार्मिक जीवन इन गोन्पाओं के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है इसलिए गोन्पाओं की परंपरा और उनसे जुड़े लामाओं की संख्या, जो प्रत्येक गोन्पा में भिन्न होती है, को बनाए रखना आवश्यक होता है। इसलिए यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि प्रत्येक बौद्ध परिवार निस्संकोच अपने घर से एक बालक या कन्या को गोन्पा को समर्पित करता आया है, जिससे वह परिवार जुड़ा हुआ है। हालाँकि उचित यह है कि मठवादी जीवन में किसी बालक या कन्या को तब डाला जाए जब वह इस बारे में अपना स्वतंत्र निर्णय लेने योग्य हो जाए और मठवादी जीवन की पवित्रता एवं त्याग से प्रेरित होकर वह स्वयं यह निर्णय करे। मठवादी जीवन में प्रवेश करने के तुरन्त बाद कन्या या बालक का मुण्डन किया जाता है और उसे एक नया नाम दिया जाता है। संघ की सबसे ऊँची पदवी पाने के योग्य होने के लिए दोनों को ही भिक्षु जीवन के अनेक स्तरों से गुज़रना पड़ता है।

वस्त्र

साधारण तौर पर लामा लाल रंग का पूरी बाजू वाला कोटनुमा ऊपरी वस्त्र और एक लंबी स्कर्ट जैसी पोशाक पहनते हैं।[25] उनके जूते भी लाल रंग के होते हैं और उनका सिर खुला ही रहता है। अधिकतर लामाओं के सिर मुँडे हुए या छोटे-छोटे बालों वाले होते हैं। उनकी दाहिनी बाजू खुली रहती है और वे आभूषण नहीं पहनते।

दलाई लामा एवं टाशी लामा एक ही तरह के वस्त्र धारण करते हैं परन्तु उनके वस्त्र पीले रंग के होते हैं।[26] विशेष अवसरों पर वे एक विचित्र शंक्वाकार टोपी धारण करते हैं जिसके दोनों तरफ़ लंबे-लंबे पल्ले होते हैं।

प्रधान लामा की खोज

जब किसी कुशोक की मृत्यु हो जाती है तब उनसे संबंधित मठ उनके नए अवतार की खोज करने के लिए उपयुक्त कदम उठाते हैं। यह प्रक्रिया नए दलाई लामा की खोज की प्रक्रिया के समान ही होती है। इस खोज में हालाँकि म्रियमाण कुशोक के द्वारा अपने भावी अवतार के जन्म के क्षेत्र की दिशा विषयक संकेत से भी सहायता मिलती है। उनकी चिता से उठते धुँए की दिशा भी एक महत्त्वपूर्ण चिह्न साबित हो सकती है। ल्हासा के राजकीय आप्तपुरुष, जो अतीन्द्रिय दृष्टि के गुण से सम्पन्न होते थे, लामा के पुनर्जन्म के विषय में और भी कई जानकारियाँ देते थे जैसे वह प्रांत एवं परिवार जिसे लामा ने अपने पुनर्जन्म से धन्य किया है।

कुशोक मठों के प्रधान लामा होते हैं। लद्दाख में रिज़ोङ् मठ के कुशोक को स्रस रिन्पोछे और स्पीतुक एवं संकर मठ के कुशोक को बकुला रिन्पोछे के नाम से जाना जाता है। लिकिर मठ के कुशोक ङारी त्सङ् हैं। हेमिस, फ्याङ्, ठिगसे, दिस्किट, रिजोङ्, समस्तनलिङ्, लिकिर, स्पीतुक, संकर एवं स्तकना मठों के कुशोक अपने-अपने मठों के प्रति श्रद्धा रखने वाले लोगों के कल्याण के लिए बार-बार अवतार लेते हैं। बोधिसत्त्व अर्थात् भविष्य बुद्ध होने के कारण कुशोक के प्रति लोगों में गहरी श्रद्धा होती है। कुशोक से आशीर्वाद लेने वाला उनके सामने तीन बार धरती पर साष्टांग प्रणाम करता है और फिर कुशोक उसके सिर पर धीरे से थपथपाकर उसे आशीर्वाद देते हैं।

इसी प्रकार बौद्ध त्रिरत्नों में से तीसरे रत्न अर्थात् संघ के सदस्य होने के कारण भिक्षुओं को भी साधारण जन द्वारा बहुत सम्मान दिया जाता है। सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों जैसे जन्म, मृत्यु, विवाह आदि में इनकी उपस्थिति अत्यावश्यक होती है। मठ के द्वारा भिक्षुओं की धार्मिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण का ध्यान रखा जाता है और उन्हें विद्वता के उच्चतर स्तर पर पहुँचाने के लिए सुविधाएँ प्रदान की जाती

हैं। तिब्बत पर चीन का कब्ज़ा होने से पहले लद्दाख से चुने गए भिक्षुओं को तिब्बत के विभिन्न मठवादी संस्थानों में उच्च शिक्षा के लिए भेजा जाता था जिसकी सुविधा लद्दाख में उपलब्ध नहीं थी। परन्तु इस प्रकार की सुविधाएँ आज लद्दाख एवं कर्नाटक के विभिन्न मठवादी संस्थानों में उपलब्ध हैं।

मठों का संगठन[27]

मठों के रख-रखाव का कार्य दो भागों में बँटा हुआ होता है– पुरोहित के कार्य संबंधी भाग एवं प्रबंधन के कार्य संबंधी भाग। पुरोहित के कार्य संबंधी भाग के प्रधान कुशोक को इन कार्यों के पालन में चार अधिकारियों का सहयोग रहता है– लबन(Laban), उमज़द, उचुड़ एवं चुसलंबा(chhuslamba)। लोबोन द्वारा सामूहिक पूजा का नेतृत्व एवं निरीक्षण किया जाता है। उमज़द झाँझ बजाकर पूजा आरंभ कराता है और इस कार्य में उचुड़ उसकी सहायता करता है। छुटिमपा द्वारा पूजा का आयोजन किया जाता है और अनुशासन को बनाए रखने की ज़िम्मेदारी भी उसी की होती है।

छगज़ोद गोन्पा के प्रबंधकीय कार्यों का मुखिया होता है। अपने अनेक प्रबंधकीय कर्तव्यों को निभाने में छगज़ोद को कुछ अन्य कर्मचारियों का सहयोग रहता है। छगज़ोद द्वारा किए जाने वाले कार्यों में आय एवं खर्च पर नियंत्रण रखना, गोन्पा की भूमि एवं अन्य संपत्ति की देखरेख करना और आवासी लामाओं के लिए खाद्य सामग्री, वस्त्र एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध करना आदि आते हैं। कुशोक द्वारा कुछ छगज़ोदो को उनकी योग्यता एवं निष्ठा के भरोसे पर विशाल प्रबंधकीय कार्य सौंपे जाते हैं। इन कार्यों के निर्वाहन में ड्रोछक एवं न्यरछु द्वारा छगज़ोद की सहायता की जाती है। डोनयर(Donyar) पूजा की सामग्रियों के भंडारगृह का प्रधान होता है और देचङ् द्वारा इस कार्य में उसकी सहायता की जाती है। न्येरपा भूसम्पत्ति का प्रबंधक होता है जो छगज़ोद के उत्तरदायित्व में यह कार्य करता है।

उपरोक्त सारे पदों के लिए कर्मचारी संघ के भीतर से गुण एवं योग्यता के बल पर चुने जाते हैं। इनमें से कुछ पद लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव के बाद भरे जाते हैं और कुछ परीक्षा के आधार पर। इन चुनावों में गाँव के लोगों की बड़ी

उत्सुकता और रुचि रहती है।

शाक्य थुबा

बुद्ध या शाक्यमुनि हमेशा बैठी हुई मुद्रा में ही देखे जाते हैं। उनका दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर टिका रहता है और बायें हाथ में, जोकि उनकी गोद में रखा हुआ होता है, एक भिक्षा पात्र उठाए हुए होते हैं। उनकी देह का वर्ण पीत एवं केश नीले और घुँघराले होते हैं।

छोस कोनछोग[28]

इस देवी का नाम 'धर्म' है और इन्हें बैठी हुई मुद्रा में दिखाया गया है। इनकी चार भुजाएँ हैं– दो भुजाएँ प्रार्थना की मुद्रा में हैं। तीसरे हाथ में वे एक माला धारण किए हुए हैं और चौथे में एक कमल। इनका वर्ण श्वेत होता है।

गेदुन कोनछोग

इस देवता को संघ भी कहते हैं और इन्हें बैठी हुई मुद्रा में बायें हाथ में कमल और दायाँ हाथ घुटने पर रखा हुआ दर्शाया गया है।

लोबोन छोशमपा

इस बोधिसत्व को मैत्रेय या आगामी बुद्ध कहते हैं। बैठी हुई मुद्रा में हाथ को वक्ष तक कमल की मुद्रा में उठाए हुए इन्हें देखा जाता है। बुद्ध की ही तरह, इन्हें भी पीत वर्ण में छोटे घुँघराले केश वाले दिखाया गया है।

जम्बेयङ्

इस बोधिसत्त्व को मंजुश्री भी कहते हैं। मंजुश्री को बैठी हुई मुद्रा में एक हाथ में खड़ग और दूसरे में कमल धारण किए हुए देखा जा सकता है। इन्हें भी पीत वर्ण में दर्शाया जाता है।

चनराज़िक

इस बोधिसत्त्व को अवलोकितेश्वर भी कहते हैं। इन्हें खड़ी मुद्रा में दर्शाया जाता है।

दायाँ हाथ विश्राम की मुद्रा में होता है और बायें हाथ में कमल। इनकी देह का वर्ण श्वेत होता है।

छगना दोर्जे

इस बोधिसत्त्व को वज्रपाणि भी कहा जाता है। वज्रपाणि को खड़ी मुद्रा में पीत वर्ण का, दायें हाथ में कमल धारण किए हुए और बायाँ हाथ खाली दर्शाया जाता है।

तुङ्शक

इस देवता को अमोघ सिद्ध भी कहते हैं। इनको खड़ी हुई मुद्रा में हरित वर्ण का दर्शाया गया है। इनका बायाँ हाथ विश्राम की मुद्रा में और दायाँ प्रवचन देने की मुद्रा में दर्शाया गया है।

डोलमा

ये बोधिसत्त्व तारा के नाम से जानी जाती हैं– इनको अमोघ सिद्ध की शक्ति माना जाता है और यह हरिण वर्ण की होती हैं। इनका दायाँ हाथ विश्राम की मुद्रा में गोद में रखा हुआ होता है और बायें हाथ में तारा कमल धारण किए हुई होती हैं।

वर्गचुक

त्रिनेत्र वाले बोधिसत्त्व वर्गचुक की देह का वर्ण नीला होता है और इन्हें अक्सर लाल वर्ण में भी देखा जा सकता है। अपने दायें कर में वज्र का खड़ग धारण किए हुए वर्गचुक क्रोधित मुद्रा में, भयावह मुख के और अग्नि की लपटों से घिरे हुए दिखाए जाते हैं। इनके चरणों के नीचे दुष्प्रवृत्त लोगों को रौंदा हुआ दर्शाया जाता है।

तोदे-फग-मो

इस स्त्री बोधिसत्त्व को काली भी कहा जाता है। इन्हें लोहित वर्ण में कपाल माला धारण किए हुए दर्शाया गया है। दायें हाथ में वज्र और बायें में रक्त से भरा पात्र धारण किए हुए इस बोधिसत्त्व को चारों ओर से अग्नि से घिरी दर्शाया गया है।

आनुष्ठानिक उपकरण

घंटा, वज्र एवं प्रार्थना चक्र बौद्ध धर्म के आनुष्ठानिक उपकरणों में प्रयुक्त हैं। घंटा या डिलबु प्रतिदिन के धार्मिक अनुष्ठान का एक अभिन्न अंग है। यह एक विशेष प्रकार के सफ़ेद मुलायम धातु से बना होता है। घंटे के ऊपर अनेक शब्द लिखे होते हैं जैसे– तँ, मँ, लँ, बँ, मँ, त्सुँ, पँ और द्रिँ।

वज्र या दोर्जे हिंदू धर्म के वज्र के समान ही है। यह एक पौराणिक धार्मिक चिह्न है। माना जाता है कि यह भारत से उड़कर तिब्बत के सेरा नामक क्षेत्र में जाकर गिरा था। भारतीय इसे शक्ति एवं श्रद्धा से संबद्ध उपकरण मानते हैं। तिब्बत में इस उपकरण के प्रति श्रद्धा का इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ इस चिह्न के सम्मान में एक वार्षिक उत्सव मनाया जाता था। इस अवसर पर उक्त चिह्न को आनुष्ठानिक शोभायात्रा में सेरा से पोताला तक ले जाया जाता जहाँ इसे दलाई लामा को भेंट किया जाता, जो वज्र के प्रति अपनी श्रद्धा दिखलाते हुए उसे प्रणाम करते।

तीसरा उपकरण मणि छोस्कोर या प्रार्थना चक्र है जो कि एक गोल धात्विक उपकरण होता है। यह लगभग तीन इंच ऊँचा एवं लगभग ढाई इंच के व्यास का होता है। यह एक सुचालनीय उपकरण है जिसे कई बौद्ध अनुयायी अपने साथ लेकर चलते हैं। उत्कीर्ण मंत्रों की गड्डियों का यह पात्र होता है जो उपकरण के घूमने के साथ-साथ घूमता रहता है। उपकरण का प्रत्येक चक्कर उसके अंदर निहित मंत्रों के उच्चारण का प्रतीक होता है। लामाओं के लिए यह एक अत्यावश्यक उपकरण होता है, बल्कि कई लामा इस उपकरण को हाथ में लिए धीरे-धीरे घुमाते रहते हैं। कई मठों के परिक्रमा-पथ पर बड़े-बड़े लकड़ी के प्रार्थना चक्र लगे होते हैं जो धक्का देने पर अपनी धुरी पर घूमते रहते हैं। इनके भीतर भी मंत्र मुद्रित गड्डियाँ होती हैं, जो तीर्थयात्रियों द्वारा चक्र को घुमाने के साथ बहुगुणित होकर सूत्र के उच्चारण का प्रतीक हो जाता है। छोटे-बड़े हर प्रकार के मणि-चक्रों पर 'ओम मणि पद्मे हुँ' (कमल में विद्यमान मणि)[29] का मंत्र मुद्रित होता है। यह मंत्र अवलोकितेश्वर या पद्मपाणि को संबोधित होता है और चौथी शताब्दी से चलन में

है। गोन्पाओं और घरों के ऊपर लगे धार्मिक पताके समस्त जीव के कल्याण हेतु प्रार्थना के प्रतीक हैं।

II

द्वितीय अध्याय

विश्लेषण भाग

विश्लेषण भाग

'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' इस क्षेत्र के लगभग हर पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसे लद्दाख पर लिखित एक अच्छी पुस्तक कहा जा सकता है, हालाँकि पूर्णतः निर्दोष तो कोई भी कृति नहीं हुआ करती। अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य होने के कारण अनुवाद करते समय अनुवादक को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से मूल के जितना हो सके निकट का अनुवाद प्रस्तुत करना होता है। समस्याएँ प्रत्येक प्रकार के अनुवाद में अवश्य ही आती हैं परन्तु उन समस्याओं का अनुवादक किस प्रकार समाधान करता है, इस बात पर अनूदित कृति की सफलता या निष्फलता निर्भर करती है। उक्त पुस्तक के प्रथम छः अध्यायों का अनुवाद करते समय प्रस्तुत शोध-अध्येता का भी अनेक समस्याओं से सामना हुआ। शोध-प्रबंध के इस अध्याय में उन्हीं समस्याओं को लेकर उनका समाधान करने का प्रयास किया गया है। अनुवाद के दौरान जिस प्रकार की समस्याओं से शोध-अध्येता का सामना हुआ, वे इस तरह हैं–

1. पाठाधारित समस्याएँ

मूल एवं लक्ष्य भाषा के ज्ञान के साथ अनुवादक के लिए विषय ज्ञान अत्यावश्यक होता है, इसमें संदेह नहीं। यदि कृति साहित्यिक है तो साहित्यिक ज्ञान और वैज्ञानिक है तो विज्ञान का ज्ञान अनुवादक के लिए आवश्यक है जिसके अभाव में अनुवाद कार्य आगे बढ़ नहीं सकता। एच.एन. कौल द्वारा लिखित 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' में लद्दाख के भूगोल, इतिहास, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि सबका वर्णन हुआ है। स्वयं लद्दाख में जन्मी होने के कारण प्रस्तुत शोध-अध्येता को विषय का थोड़ा बहुत ज्ञान तो था, परन्तु अनुवाद एवं शोध के लिए इतना ही काफ़ी नहीं था। अतः विषय ज्ञान की इस समस्या का हल पाने के लिए लद्दाख पर लिखित प्रस्तुत पुस्तक के अलावा अन्य कई संबंधित पुस्तकों एवं शब्दकोशों का अध्ययन किया गया। साथ ही स्थानीय नागरिकों से साक्षात्कार भी किए गए ताकि अनुवाद के रास्ते की पहली बाधा को पार किया जा सके।

मूल पुस्तक में कई स्थानों पर तथ्यों एवं स्थानों के नाम आदि की भूलें हुई हैं जो अप्रामाणिक या अपुष्ट स्रोतों से जानकारी हासिल करने का परिणाम हो सकता है। विशेषकर छठे अध्याय के अंतिम पृष्ठों में बौद्ध धर्म का वर्णन करते समय बोधिसत्त्वों के नामों एवं उनकी कायिक एवं लाक्षणिक विशेषताओं के विवरण में काफ़ी ग़लतियाँ हैं जो संभवतः सूचना के आदान-प्रदान के दौरान भाषा एवं उच्चारण की सीमाओं के कारण हो गई हैं। वैसे भी तिब्बती शाखा का बौद्ध धर्म काफ़ी जटिल माना जाता है जो सामान्य जन आसानी से नहीं समझ सकता। शोध-अध्येता ने इस समस्या के समाधन हेतु लद्दाख में अनेक मठों के लामाओं से साक्षात्कार किया, जिनके आधार पर उक्त पुस्तक में लेखक द्वारा हुई धर्म संबंधी इन भूलों को सुधारा गया है। मूल पुस्तक के पृष्ठ 129 पर लेखक ने अनेक बौद्ध बोधिसत्त्वों का उल्लेख किया है, परन्तु यह पूरा पृष्ठ और अगले पृष्ठ की प्रथम 10 पंक्तियाँ ग़लत जानकारियों से भरी है। अनुवाद में इनको इसी प्रकार रखते हुए प्रस्तुत अध्याय अर्थात् विश्लेषण भाग में उस भाग का सुधरा हुआ रूप भी दिया गया है। एच.एन. कौल की पूरी पुस्तक में इस भाग में कई भूलें की गई हैं जिसे छोड़कर पुस्तक को सफल कृति की कोटि में रखा जा सकता है।

अनुवाद करते समय जो तीसरी समस्या आई वह थी स्थानीय शब्दों के अन.ुवाद की समस्या। लद्दाख एक विस्तृत क्षेत्र है जहाँ की भाषा में स्थानीय भिन्नताएँ काफ़ी हैं। जहाँ तिब्बत की सीमा के पास स्थित चङ्थङ् पठार के लोगों की बोली में शब्दों का उच्चारण कारगिल के लोगों के उच्चारण से एकदम अलग है। इसी प्रकार लद्दाख के केन्द्र लेह के लोग कुछ शब्दों को जिस प्रकार उच्चारित करते हैं वह दूसरे क्षेत्रों से भिन्न है। ऐसे में कश्मीरी लेखक श्री कौल को स्थानीय शब्दों के उच्चारण को समझने में निश्चित ही पर्याप्त कठिनाई हुई होगी। इस पुस्तक में व्यवहृत अनेक स्थानीय शब्दों की उच्चारण-संबंधी ग़लतियों से इसका पता चलता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंतिम उप-अध्याय में 'स्थानीय, अपरिचित शब्द' शीर्षक के अंतर्गत उन शब्दों को रखा गया है जिनसे पाठक परिचित नहीं है और जिनका

ज्ञान लद्दाख के विषय में सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। टंकण आदि की मामूली भूलों को अनुवाद के दौरान सुधार दिया गया है जबकि शब्द एवं तथ्य संबंधी ग़लतियों को इसी अध्याय में आगे सुधारा गया है।

लद्दाख पर प्रारम्भिक पुस्तकें यूरोपीय अन्वेषकों, विचारकों एवं यात्रियों द्वारा लिखी गई हैं। अनुवाद करते समय एक समस्या उन विदेशी लेखकों के नामों के लिप्यंतरण में भी आई जिनके नाम उक्त पुस्तक में बार-बार आए हैं। हिन्दी भाषा के विपरीत अंग्रेज़ी में अक्सर जो लिखा जाता है उसे उसी रूप में पढ़ा नहीं जाता। यह स्थिति स्पानी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओं में और भी जटिल हो जाती है। 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' पुस्तक में अनेक विचारकों के नामों के जटिल उच्चारण को साधने के लिए प्रस्तुत शोध-अध्येता ने इंटरनेट की भी सहायता ली है जिसके बेवसाइट्स का हवाला शोध कार्य के अंत में दिया गया है। इन नामों में फ्रांसीसी यात्री एवं अन्वेषक जी. टी. विन्य(G.T.Vigne), जर्मन अन्वेषक भाईयों हरमन, अडॉल्फ और रोबर्ट श्लागिन्टवाईट(Hermann, Adolf, Robert Schlagintweit), जर्मन विचारक फ्रैंकी(Francke), इतालवी अन्वेषक लुचिआनो पेटेक(Luciano Petech) आदि के नाम गिने जा सकते हैं।

अनुवाद करते समय शोध-अध्येता ने उपरोक्त समस्याओं का समाधान करने की भरपूर कोशिश की है। प्रस्तुत अध्याय में आगे मूल पुस्तक के अनुवाद के दौरान जिन तथ्यों से शोध-अध्येता सहमत नहीं हुई और जिन तथ्यों को लेकर पाठक को अधिक जानकारी देने की आवश्यकता दिखाई दी, उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद करते समय ऐसे वाक्यों एवं तथ्यों को अंकित एवं विश्लेषित किया गया है और तदनुसार इस अध्याय में उन समस्यों का समाधान किया गया है।

1. सन् 1999 में प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक में सन् 1981 की जनगणना के अनुसार लद्दाख का जनसांख्यिकीय आँकड़ा दिया गया है(मूल पृ.15, अनु. पृ.1)। वत. र्मान समय की आवश्यकता अनुसार सन् 2011 की जनगणना में दिया गया लद्दाख का वर्तमान जनसांख्यिकीय आँकड़ा इस प्रकार है–

लेह ज़िले की जनसंख्या — 147104

कारगिल ज़िले की जनसंख्या — 143388

2. ज़ांग्स्कर स्थित दो गाँवों के नाम 'तुंगरी-करनी'(Tungri-Kerni) दिए गए हैं (मूल पृ.22, अनु. पृ.10)। यहाँ 'तुंगरी' नाम तो ठीक है परन्तु 'करनी' ग़लत नाम है क्योंकि तुंगरी के एकदम समीप जो गाँव पड़ता है उसका नाम 'टगहन' है। लद्दाख पर लिखित अन्य पुस्तकों में 'टगहन' नाम मिलता है और इस विषय में स्थानीय लोगों से भी पूछकर पुष्टि की गई है। यह ग़लती मूल पृष्ठ 30 पर भी दोहराई गई है। ज़ांग्स्कर में पहाड़ी को 'टग' और 'के पास' या 'सटा हुआ' के लिए 'हन' शब्द का प्रयोग होता है। 'टगहन' का अर्थ है 'पहाड़ी से सटा हुआ'। टगहन गाँव एक पहाड़ी से सटा हुआ है इसलिए ऐसा नाम पड़ा।

3. पंगोङ् झील का अधिकतर भाग लद्दाख में होने की बात कही गई है (मूल पृ.23 अनु. पृ.12)। यह सूचना ग़लत है। भारत एवं तिब्बत के मानचित्र का अवलोकन करने पर और अन्य स्रोतों की जाँच करने पर साफ़ पता चलता है कि पंगोङ् झील का अधिकतर भाग (लगभग 60%) तिब्बत के अंदर पड़ता है।

4. कलाच पुल(Kallach Bridge) के स्थान पर खलत्से पुल(Khaltse Bridge) होना चाहिए (मूल पृ.28, अनु. पृ.17)।

5. तीन घाट वाली नदी को सुनी-गल(suni-gal) लिखा गया है जबकि सुम-गल(sum-gal) होना चाहिए था (मूल पृ.29, अनु. पृ.18)। लद्दाखी भाषा में सुम(sum) का अर्थ है तीन।

6. क्यङ् पशु को री-बोङ्(Ri-bong) कहा गया है (मूल पृ.44, अनु. पृ.37)। शब्दशः देखने पर यह सही लगता है क्योंकि क्यङ् का अंग्रेज़ी नाम 'वाइल्ड ऐस'(wild Ass) है और लद्दाखी में 'री' का अर्थ है 'पहाड़' और 'बोङ्बू' का अर्थ है

'गधा'। दोनों शब्दों को जोड़ दिया जाए तो इस पशु का नाम री-बोङ् सही लगता है परन्तु लद्दाख में इस पशु को क्यङ् ही कहा जाता है री-बोङ् नहीं। दिलचस्प बात यह है कि लद्दाख में ख़रगोश की एक प्रजाति को री-बोङ् कहते हैं। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान की भूमिका' में कहते हैं कि अर्थ में सदा परिवर्तन होता रहता है। अर्थ परिवर्तन की तीन दिशाएँ होती हैं। 1.अर्थ विस्तार, 2.अर्थ संकोच और 3.अर्थादेश। अर्थादेश में अर्थ का संकोच या विस्तार नहीं होता, वह पूरी तरह बदल जाता है। जैसे– वेद में 'असुर' शब्द देवता का वाचक था परन्तु बाद में दैत्य का वाचक बन गया।[34] आचार्य शर्मा के अर्थ परिवर्तन संबंधी इन विचारों को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि री-बोङ्, जिसका शाब्दिक अर्थ 'पहाड़ी गधा' है, धीरे-धीरे परिवर्तित होकर 'पहाड़ी ख़रगोश' का वाचक हो गया। लद्दाख में पाए जाने वाले ख़रगोश के लंबे-लंबे कान गधे के कानों जैसे होते हैं, संभवतः इस कारण भी इसे री-बोङ् कहा जाने लगा होगा।

7. लद्दाख के पहाड़ों में पाए जाने वाले ख़रगोश को लागोन्य्स(Lagonys) कहा गया है (मूल पृ.46, अनु. पृ.39)। लद्दाख में ख़रगोश को रिबोङ् कहा जाता है। ख़रगोश की एक प्रजाति को लागोम्य्स(Lagomys) कहा जाता है परन्तु लद्दाख में पाया जाने वाला ख़रगोश उससे भिन्न है। लागोम्य्स की पूँछ नहीं होती और कान भी बहुत लंबे नहीं होते परन्तु लद्दाख में पाए जाने वाला ख़रगोश जिसे 'केप हेयर' या 'ब्राउन हेयर' भी कहा जाता है, उसके कान लंबे होते हैं और उसकी छोटी सी झबरी पूँछ भी होती है। लद्दाख में पाए जाने वाले ख़रगोश का वैज्ञानिक नाम लेपस कपेनसिस(Lapus Capensis) है जबकि लागोम्य्स की अन्य कुछ प्रमुख प्रजातियों के वैज्ञानिक नाम इस प्रकार हैं–

---

34 भाषाविज्ञान की भूमिका आचार्य देवेनद्र नाथ शर्मा, पृ. 275

- लेपस अलपाइनस(Lepus Alpinus), जोकि यूरोप और एशिया के कुछ भागों में पाया जाता है।

- लेपस ओगोटोना(Lepus Ogotonna), जिसे एशियाई लागोम्य्स भी कहते हैं, और

- लेपस प्रिन्सेप्स(Lepus Princeps) जो अमेरिका में पाया जाता है।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि ग्रीक में ख़रगोश को लागोस और लैटिन में लागुस कहा जाता है। लागोम्य्स शब्द का इससे कुछ संबंध होना संभव है।

8. लङ् दरमा को 'जुलिएन द अपोस्टेट'(Julian the Apostate) कहा गया है(मूल पृ. 50, अनु. पृ.44)। पाठक की जानकारी के लिए जुलिएन कौन था, इसकी यहाँ थोड़ी चर्चा की जा रही है। जुलिएन चौथी शताब्दी में ग्रीक का एक सम्राट एवं विचारक था। इसके माता पिता इसाही थे परन्तु उसने रोम की पौराणिक धार्मिक प्रथाओं को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से इसाही धर्म का पुरज़ोर खंडन किया और इसी कारण चर्च द्वारा उसे अपोस्टेट या धर्मत्यागी बुलाया जाने लगा। लङ् दरमा ने भी तिब्बत में बौद्ध धर्म के विरुद्ध जाकर पूर्व प्रचलित बोन धर्म का समर्थन किया था और बौद्ध धर्म का विनाश करने पर उतारू हो गया था। इसलिए इस राजा को बौद्ध धर्म का 'जुलिएन द अपोस्टेट' कहा गया है।

9. लामा ल्हालुङ् पलगी दोर्जे ने लङ् दरमा का अंत किया था। पुस्तक में 'ल्हाचुङ् पलजी'(Lama Lachung Palji) लिखा गया है जो ग़लत है (मूल पृ.50, अनु. पृ.44)। यही ग़लती आगे भी दोहराई गई है।

10. ल्हाछेन टकपा बुमल्दे द्वारा स्थापित इमारतों एवं बुद्ध की मूर्तियों में 'चामीमेर'(Chamiamer) और सुमरस्क(Sumrask) का उल्लेख हुआ है (मूल पृ.55, अनु. पृ.50)। प्रस्तुत शोध-अध्येता इस विषय में लेखक से सहमत नहीं है। प्रचलित मत एवं लद्दाख पर लिखित अन्य अनेक पुस्तकों, विशेषकर केन्द्रीय

बौद्ध विद्या संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तक[35] और नवाङ् त्सेरिङ् द्वारा लिखित 'ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ लद्दाख[36] में साफ़ लिखा हुआ है कि ल्हाछेन टकपा बुमल्दे ने लेह स्थित लाल मंदिर (जिसे ल्हाखङ् मरपो कहा जाता है) में मैत्रेय बुद्ध की एक विशाल मूर्ति को प्रतिष्ठापित कराया। साथ ही, लेह के ऊपरी भाग में बने प्राचीन स्तूप का भी निर्माण कराया जो तिसेरु के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार लेखक द्वारा दिए गए दोनों नाम ग़लत लगते हैं। मूल पाठ से सहमत न होते हुए भी उक्त शब्दों को हिन्दी अनुवाद में यथावत् रख दिया गया है।

11. लामा स्तगसङ् रसपा द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक 'शमभाला की यात्रा'(Journey to Shambhala) को ग़लती से(Journey to Sambata) लिखा गया है (मूल पृ.61, अनु. पृ.57)।

12. राजा सिंगे नमग्यल द्वारा जिन धार्मिक ग्रंथों की प्रतियाँ बनवाई गई थीं उनका हवाला देते हुए ग्रंथों का नाम 'चम छुस वीना'(Cham Chhus vina) लिखा गया है (मूल पृ.61, अनु. पृ.58), जबकि 'चम छोस ल्दे ङा'(Cham Chhos Lde nGa) होना चाहिए था। लद्दाख के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं विचारक टाशी रबग्यस द्वारा लद्दाखी भाषा में लिखी गई 'लद्दाख का इतिहास'[37] पुस्तक से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

13. राजा पुनत्सोग नमग्यल के बाद सस्क्योङ् नमग्यल ने राज्य संभाला या नहीं, इस बात को लेकर विभिन्न लेखकों में मतभेद है (मूल पृ.67, अनु. पृ.64)। एक तरफ़ जहाँ *कौल* एवं *रिज़वी* जैसे लेखकों का मानना है कि राज्य का सही उत्तराधिकारी होने के कारण सस्क्योङ् नमग्यल को मठवादी जीवन त्यागकर वापस आना पड़ा था, वहीं *नवाङ् त्सेरिङ्* एवं *ओ सी हान्डा* उन लेखकों में हैं जो लद्दाख क्रॉनिकल्स का पक्ष लेते हुए मानते हैं कि

---

35 हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश, पृ-27

36 A Cultural History of Ladakh, Nawang Tsering, page – 12-13

37 Ladaks ki gyalrabs (Kunsel Melong)
A History of Ladakh (The Mirror Where Illuminates all), 1984, Tashi Rabgais, p-181

सस्क्योङ् नमग्यल ने मठवादी जीवन नहीं त्यागा और पुनत्सोग नमग्यल के बाद त्सेवङ् नमग्यल द्वितीय लद्दाख का अगला राजा बना।

14. राजा त्सेवङ् नमग्यल द्वितीय के पास 5000 घोड़े और उनकी देखरेख के लिए उतने ही अर्थात् 500 साईसों को रखे होने की बात कहीं गई है (मूल पृ.67, अनु. पृ.65), जिसे लेकर मतभेद है। *कनिंघम* का अपनी पुस्तक 'लद्दाख' में इसी तथ्य पर ज़ोर है जिसका *कौल* की दोनों पुस्तकों में सम. र्थन हुआ है। दूसरी तरफ़ *फ़्रैंकी* अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न टिबेट' में लिखते हैं कि, 'राजा ने 500 घोड़ों की देखभाल के लिए केवल एक साईस रखा हुआ था।' प्रजा इस राजा से कई कारणों से नाखुश थी जिनमें एक कारण अत्यधिक कर था। *फ़्रैंकी* के मत को सही मान लिया जाए तो राजा द्वारा लोगों का शोषण होने की बात सामने आती है और अगर *कनिंघम* एवं *कौल* की बात को सही माना जाए तो राजा द्वारा अनावश्यक व्यय करने की सूचना मिलती है।

15. सोमो दे कोरोस(Csomo de Koros) नाम ग़लत एवं अधूरा है (मूल पृ.68, अनु. पृ. 66)। असल नाम अलेकज़ेन्द्र सोमा दे कोरोस(Alexander csoma De Koros) है। वे एक हंगेरियन अन्वेषक थे। कोरोस को सन् 1823 में प्रथम अंग्रेज़ी-तिब्बती कोश के निर्माण का श्रेय जाता है जो कि सन् 1824 में प्रकाशित हुई। वे तिब्बतवाद(Tibetology) के स्थापक के रूप में भी जाने जाते हैं। श्री नगर के पास उनकी समाधि भी है।

16. (मूल पृ.91, अनु. पृ.93) कुठ(Kuth) औषधि आदि में काम आने वाली एक मूल्यवान एवं दुर्लभ वनस्पति है। अंधाधुन्ध इस्तेमाल के कारण इस वनस्पति पर विलोपन का ख़तरा बना हुआ है। इसका वैज्ञानिक नाम सोस्सुरे कोस्टस(Saussurea Costus) है।

17. (मूल पृ.117, अनु. पृ.123) ओडियान(oddiyana), जिसे लद्दाखी भाषा में उर्ग्यनयुल कहा जाता है, प्राचीन भारत स्थित एक क्षेत्र है, जो बौद्ध धर्म की तंत्रवादी शाखा के यहाँ विकसित होने के कारण प्रसिद्ध हुई। तिब्बती शाखा

के बौद्ध धर्म में अति पूजनीय, द्वितीय बुद्ध के नाम से प्रख्यात् गुरु पद्मसंभव का जन्मस्थल ओडियान माना जाता है। इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान वर्तमान पाकिस्तान की स्वात घाटी को ओडियान मानते हैं और कुछ भारत के ओड़ीसा प्रदेश को ओडियान की संज्ञा देते हैं। बाद के तिब्बती परंपराओं में ओडियान के एक रहस्यमयी लोक होने की बात मिलती है जो किसी प्रत्यक्ष क्षेत्र आदि की सीमा में बँधा हुआ नहीं है।

18. राजा लङ् दरमा के जिस पौत्र ने लद्दाख में अपना राज्य बसाया था, उस राजा का नाम स्कील्दे न्यीमागोन था, न कि ठिक जुनागोन(Thik Junagon), जैसा कि पुस्तक में लिखा गया है (मूल पृ.118, अनु. पृ.124)। न्यीमागोन से ही आगे चलकर लद्दाख में ल्हाछेन और नमग्यल राजवंश स्थापित हुआ।

19. लद्दाख में अनेक मठों का निर्माण कराकर बौद्ध धर्म के प्रचार में अपना अमूल्य योगदान देने वाले लोत्सवा रिन्छेन ज़ङ्पो द्वारा निर्मित मठों में पाँच ध्यानी बुद्धों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। पाँच ध्यानी बुद्ध हैं– अक्षोभ्य, रत्नसं. भव, अमिताभ, अमोघ सिद्धि और वैरोचन। पुस्तक में ध्यानी बुद्ध को ही पाँच बुद्धों में गिनकर वैरोचन का उल्लेख नहीं किया गया है (मूल पृ.120, अनु. पृ. 127)।

20. लद्दाख के कुछ प्रमुख मठों में भिक्षुओं की संख्या नब्बे के दशक के अनुसार दी गई है (मूल पृ.123, अनु. पृ.130) जो सन् 2012 अर्थात् वर्तमान में बदल चुकी है। इन मठों में भिक्षुओं की वर्तमान संख्या इस प्रकार है–

हेमिस मठ– लगभग 150

ठिगसे मठ– 90

लिकिर मठ– लगभग 200

फ्याङ् मठ– लगभग 130

स्पीतुक मठ– लगभग 300

लामायुरु मठ– लगभग 250

रिजोङ् मठ– लगभग 60

स्तकना मठ– 53

माठो मठ– 80

डगथोक मठ– 45

भिक्षुओं की एक सटीक संख्या न होने का एक बड़ा कारण यह है कि पिछले कुछ दशकों से लद्दाख के विभिन्न मठों से जुड़े कई भिक्षु भारत एवं विदेश के अन्य मठों में उच्च शिक्षा के लिए जाते रहे हैं जिससे मठों के लिए भिक्षुओं की एक सटीक गिनती संभव नहीं हो पाती। कई मठों से अन्य दूरस्थ स्थित मठ भी जुड़े होते हैं जिससे दोनों मठों के भिक्षुओं को साथ गिना जाता रहा है।

21. कालचक्र के संदर्भ में लिखा गया है कि उसमें संसार एवं जीव के अस्तित्व संबंधी ज्ञान को चित्रों के माध्यम से दर्शाया जाता है (मूल पृ.124, अनु. पृ. 131)। यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि संसार विषयक ज्ञान देने वाला चक्र भव-चक्र कहलाता है। काल-चक्र इससे भिन्न है।

22. पशु लोक को 'तुटोलोवी जिग्स्तेन(Tutolovi Jiksten) लिखा गया है (मूल पृ.125, अनु. पृ.132) जबकि असल में तुडोयी जिग्स्तेन(Tudoyi Jigsten) होना चाहिए था। लद्दाखी भाषा में तुड़ो शब्द 'पशु' का वाचक है और 'जिग्स्तेन' शब्द 'संसार' का।

23. बौद्ध त्रिरत्न अर्थात् बुद्ध, धर्म एवं संघ को लद्दाखी भाषा में 'कोनछोग सुम' कहा जाता है, जिसे पुस्तक में 'कोन-छ-कितुन'(Kon-Chh-Kitun) दिया गया है जो ग़लत है (मूल पृ.125, अनु. पृ.133)।

24. (मूल पृ.126, अनु. पृ.134) हीनयान और महायान शाखाओं को भिक्षओं द्वारा धारण किए गए टोपियों के रंग के आधार पर विभाजित नहीं किया जाता बल्कि बौद्ध धर्म को लेकर उनके कुछ विचारों एवं प्रथाओं के आधार पर अलग किया जा सकता है। हालाँकि दोनों शाखाओं के मूल में बुद्ध द्वारा स्थापित धर्म एवं उपदेश ही विद्यमान है। वस्त्र को ओढ़ने, बाँधने आदि के ढंग में कुछ भिन्नता अवश्य है। साथ ही पुस्तक में यह भी कहा गया है कि महायान शाखा के भिक्षुओं को मांस और मदिरा सेवन मना है जबकि हीनयान में ऐसा परहेज़ मान्य नहीं है। यह बिल्कुल ग़लत सूचना है क्योंकि बौद्ध धर्म मांस और मदिरा सेवन का समर्थन किसी भी रूप में नहीं करता, चाहे वह हीनयान हो या महायान, यह नियम दोनों के लिए समान है। बौद्ध धर्म की महायान शाखा की विभिन्न उपशाखाओं में लामाओं द्वारा विशेष उत्सवों पर धारण किए जाने वाली टोपी के रंग में भिन्नता होती है जिस पर लेखक द्वारा पीछे चर्चा की गई है।

25. लामाओं या भिक्षुओं के वस्त्र सामान्यतः पूरी बाजू वाले नहीं होते (मूल पृ.126, अनु. पृ.134) परन्तु लद्दाख जैसे ठंडे इलाक़े में, विशेषकर सर्दियों के दौरान भिक्षुओं के लिए पूरी बाजू वाले मोटे वस्त्र पहनना आवश्यक हो जाता है।

26. दलाई लामा एवं टाशी लामा द्वारा पीले रंग के वस्त्र धारण करने की बात लिखी गई है (मूल पृ.127, अनु. पृ.135) जबकि ऐसा नहीं है। वे भी अन्य लामाओं की तरह ही गहरे लाल रंग का वस्त्र ही धारण करते हैं। केवल भीतर धारण किए जाने वाली बिना बाजू वाली कमीज़ ही पीले रंग की होती है। हालाँकि दलाई लामा द्वारा कई बार एक पीत रंग का ऊपरी वस्त्र ओढ़ा जाता है।

27. मठों की भीतरी व्यवस्था के विषय में चर्चा करते हुए कई शब्दों का उच्चारण ग़लत हुआ है (मूल पृ.128, अनु. पृ.136) जिनमें लबन(Laban) के स्थान पर ला. `बोन(Lobon), छुसलम्बा(Chhuslamba) के स्थान पर छुटिमपा(Chhutimpa), डोनयर(Donyar) के स्थान पर डोनड्ेर(Don-nyer) आदि होना चाहिए था।

28. आगे मूल पृ.128, अनु. पृ.137 की अंतिम पंक्ति से लेकर मूल पृष्ठ 130 की प्रथम पंक्तियों तक (अनु. पृ.138) में लेखक द्वारा दी गई जानकारियों का संशोधित रूप हिन्दी में प्रस्तुत है।

छोस कोनछोग

बौद्ध त्रिरत्नों के अंतर्गत बुद्ध, धर्म एवं संघ आते हैं। बुद्ध को सङ्ग्यस कोनछोग कहा जाता है और धर्म को छोस कोनछोग कहते हैं। इनको किसी कायिक रूप में नहीं दर्शाया गया है।

गेदुन कोनछोग

सङ्ग्यस कोनछोग एवं छोस कोनछोग के बाद तीसरा रत्न है संघ, जिसे तिब्बती एवं लद्दाखी भाषा में गेदुन कोनछोग कहा जाता है। संघ को भी किसी प्रतिमा के माध्यम से नहीं दर्शाया गया है।

चम्सपा या चम्बा

चम्बा को मैत्रेय बुद्ध या आगामी बुद्ध भी कहा जाता है। मैत्रेय को बैठे-खड़े दोनों मुद्राओं में देखा जा सकता है। उनके हाथ कमल की मुद्रा में वक्षस्थल तक उठे हुए होते हैं। मैत्रेय की देह का वर्ण पीत एवं केश बुद्ध की तरह घुँघराले एवं नीले रंग के होते हैं।

जम्बेयङ्

जम्बेयङ् को मंजुश्री भी कहते हैं। वे बैठी हुई मुद्रा में दायें हाथ में खड़ग और बायें हाथ में कमल धारण किए हुए होते हैं। मंजुश्री की देह का वर्ण भी पीत दर्शाया जाता है।

चनराज़िक

चनराज़िक अवलोकितेश्वर का तिब्बती नाम है। अवलोकितेश्वर की प्रतिमाओं को बैठी हुई एवं खड़ी हुई दोनों मुद्राओं में देखा जा सकता है। दायें कर में वे कमल

धारण किए हुए होते हैं। अवलोकितेश्वर का वर्ण श्वेत होता है।

छगना दोर्जे

वज्रपाणि को छगना दोर्जे कहा जाता है जिन्हें खड़ी हुई मुद्रा में एक हाथ में वज्र एवं दूसरे में पाश या रस्सी धारण किए हुए दर्शाया जाता है। इनका वर्ण नीला होता है।

तुङ्शक

तुङ्शक के अंतर्गत 35 बुद्ध आते हैं, जिनको लक्ष्य कर जीव अपने पतन को स्वीकार कर प्रार्थना करते हैं। तुङ्शक को 'पतन-स्वीकार-सूत्र'(Sutra of the Confessions of Downfalls) भी कहा जाता है।

डोलमा

डोलमा या तारा एक स्त्री बोधिसत्त्व हैं जिन्हें आमोघि सिद्धि की शक्ति माना जाता है। तारा को बैठी हुई मुद्रा में दायें कर को कोहनी पर रखे और बायें कर में कमल धारण किए हुए दर्शाया जाता है। तारा के कई रूप हैं– जैसे हरित, पीत, लाल, नील, श्याम एवं श्वेत आदि।

गोन्बो

गोन्बो या महाकाल के तीन नेत्र होते हैं। इनका वर्ण सामान्यतः काला दिखाया जाता है परन्तु इनके अन्य नीले एवं श्वेत वर्ण के रूप भी होते हैं। महाकाल के अनेक रूपों में दो भुजाओं वाले महाकाल, चतुर्भुज महाकाल, षटभुज महाकाल एवं अन्य रूप भी शामिल हैं। महाकाल को क्रोधित मुद्रा में और अग्नि की लपटों से घिरा हुआ दर्शाया जाता है।

दोर्जे फगमो

दोर्जे फगमो एक स्त्री बोधिसत्त्व हैं जिनकी देह का वर्ण लोहित और गले में कपालों की माला होती है। दोर्जे फगमो अपने दायें कर में वज्र एवं बायें कर में रक्त से भरा चषक धारण किए हुए होती हैं। हिन्दू धर्म की काली माता से मुद्राओं आदि की सम.

ानता के कारण इन्हें काली का समरूप कई विद्वानों द्वारा माना जाता है।

29. 'ओम् मणि पद्मे हुँ' का सरल अंग्रेज़ी अनुवाद(oh thou jewel in the lotus) 'कमल में विद्यमान मणि' किया जाता है परन्तु असल में इस मंत्र का अर्थ इससे काफ़ी गहन है जिसे लेकर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। एक प्रचलित मत यह है कि यह मंत्र बौद्ध धर्म की मान्यता अनुसार छः लोकों में दुख भोगते समस्त जीवों की मुक्ति या निर्वाण की प्रार्थना का मंत्र है(मूल पृ.131, अनु. पृ. 139)।

2. अपरिचित, स्थानीय शब्द

अंग्रेजी / रोमन लिपि में	लिप्यांतरण / अनुवाद (हिंदी में)	भोटी लिपि में	अर्थ (हिंदी में)
Maryul	मरयुल		लाल माटी वाली भूमि मरपो-लाल युल-प्रदेश, क्षेत्र
Kha chen pa	खाचन पा		हिम से पूर्ण, हिमभूमि खा-हिम चन-से पूर्ण
La	ला		दर्रा
Balti	बाल्ती		बाल्तीस्तान के निवासियों को बाल्ती कहा जाता है। बाल्तीस्तान मूल के मुसलमान जो लद्दाख में आकर बस गए उन्हें भी बाल्ती कहा जाने लगा। वर्तमाण लद्दाख के कुछ भागों में शिया मुसलमानों को बाल्ती कहा जाता है।
Goncha	गोन्चा		लद्दाखी स्त्री-पुरुष द्वारा पहना जाने वाला लबादा
Tsampa (Parched grim flour)	त्समपा		भुनी हुई जौ के सत्तू को त्समपा कहते हैं, जिसका लद्दाख में कई रूपों में सेवन होता है।
Gur-gur tea	गुर-गुर चाय		मक्खन और नमक वाली लद्दाखी चाय। जिस उपकरण की मदद से चाय बनती है, उससे उत्पन्न होती गुर गुर की ध्वनि से ही बाहर के लोगों द्वारा इसे यह नाम दिया गया होगा।

Gyalpo	ग्यलपो		राजा
Junglam	जुङ्लम		बीच का रास्ता जुङ्– बीच लम– रास्ता
Tso	त्सो		जल के बड़े स्रोत जैसे झील, समुद्र आदि
Tso mapham	त्सो माफम		मानसरोवर झील का तिब्बती नाम
Kyang tso	क्यङ् त्सो		जंगली घोड़ा झील
Gya tso	ग्या त्सो		समुद्र
Dzo	ज़ो		याक और गाय की संकर संतान
Dzomo	ज़ोमो		याक और गाय की मादा संकर संतान
Brong	ब्रोङ्		याक की एक अन्य प्रजाति
Kangyur	कांग्युर		बौद्ध धर्म के दो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं पूज्य ग्रंथों में से एक
Tangyur	तांग्युर		बौद्ध धर्म के दो प्रमुख एवं पूज्य ग्रंथों में से दूसरा ग्रंथ
Gelugspa, Degungpa, Nyingmapa, Saskyapa Drukpa	गेलुक्स पा, डिगुङ् पा, ञीङ्मा पा, सस्क्या पा, ड्रुक पा		महायान बौद्ध धर्म के तिब्बती शाखा के अंतर्गत आनेवाली विभिन्न शाखाएँ
Chorten/ Stupa	छोरतेन/ स्तूप		महत्त्वपूर्ण धार्मिक अवशेषों को रखने के लिए निर्मित ढाँचा। लद्दाख एवं तिब्बत में हर कहीं स्तूप पाए जाते हैं। ये आठ प्रकार के होते हैं।
Losar	लोसर		तिब्बती एवं लद्दाखी भाषा में नव वर्ष को लोसर कहा जाता है

Mani-wall	मणि-दीवार		पत्थरों पर खुदे बौद्ध मंत्रों को रखने के लिए निर्मित लंबी एवं चौड़ी दीवारें जो लद्दाख में अनेक स्थानों पर देखे जा सकते हैं। बौद्ध अनुयायियों द्वारा इनकी परिक्रमा की जाती है।
Om mani padme hum	ओम् मणि पद्मे हुँ		बोधिसत्व अवलोकितेश्वर को संबोधित मंत्र जिसका उच्चारण समस्त जीवों के कल्याण हेतु किया जाता है।
Khatak	खादग्स		पूज्य लामा एवं अतिथि का सत्कार करने और अन्य शुभ अवसरों पर भेंटपूर्वक दिया जाने वाला महीन पारं. परिक कपड़ा।
Guru rinpoche	गुरु रिन्पोछे		बौद्ध धर्म के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले गुरु पद्मसंभव(आठवीं शताब्दी) को गुरु रिन्पोछे नाम से तिब्बत एवं लद्दाख में पूजा जाता है। इन्हें द्वितीय बुद्ध भी कहा जाता है।
Dhyani Buddhas	ध्यानी बुद्ध		बौद्ध धर्म के अंतर्गत आने वाले पाँच ध्यानी बुद्ध– अक्षोभ्य, अमोघसिद्धि, अमिताभ, रत्नसंभव, वैरोचन।
Perak	प्रेक		लद्दाखी महिलाओं द्वारा महत्त्वपूर्ण उत्सवों पर पहना जाने वाला सिर का आभूषण।
Tunglak	तुङ्लग		शंख से बना कड़ा जो महत्त्वपूर्ण उत्सवों पर महिलाओं द्वारा पहना जाता है।
Kon Chok Sum	कोन छोक सुम		बौद्ध त्रिरत्न– बुद्ध, धर्म, संघ
Kala Chakra	काल-चक्र		बौद्ध धर्म के तंत्रवाद शाखा के अंतर्गत एक बोधिसत्व

Bhav chakra	भव-चक्र		सांसारिक दुखों को चित्रित करते हुए निर्वाण की प्रेरणा देता संसार का प्रतीकवादी चित्र जो बौद्ध मठों के मुख्य द्वार की बाहरी दीवार पर बना हुआ होता है।
Mani choskor	मणि छोसखोर		बौद्ध मंत्रों को भीतर सँजोए हुए छोटे-बड़े गोलाकार चक्र जिन्हें बौद्ध अनुयायियों द्वारा घुमाकर पुण्य प्राप्त किया जा सकता है।
Thangka	थंका		सूती या रेशमी कपड़े पर बने चित्र जिनमें बुद्ध एवं बौद्ध धर्म संबंधी ज्ञान संचित होता है। बौद्ध मठों में नए, पुराने हर प्रकार के थंकाओं के दर्शन हैं।

लद्दाख का पुनर्संधान/पाठ संबंधी चित्र

1. वर्तमान लद्दाख के विभिन्न क्षेत्रों को दर्शाता मानचित्र

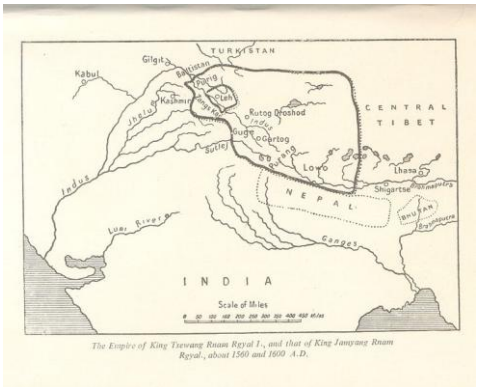

2. राजा त्सेवङ् नमग्यल के अधीन क्षेत्र का मानचित्र

3. जम्मू-कश्मीर राज्य का मानचित्र

4. हिमालय में स्थित लद्दाख पर्वत श्रृंखला

5. ज़ोजीला दर्रा

6. पंगोङ् झील

7. ज़ांग्स्कर एवं सिंध नदी का स्नेमो के पास संगम

8. लेह के बाज़ार का एक पुराना चित्र

9. सियाचन हिमनदी पर तैनात भारतीय सेना के जवान

10. लेह स्थित नमग्यल राजमहल

11. मैगपाइ पक्षी

12. रिबोङ् (वुली हेयर)

13. क्याङ्

14. याक

15. मार्मट

16. शाक्यमुनि की ताम्र प्रतिमा

17. चतुर्भुज अवलोकितेश्वर

18. तारा देवी की ताम्र प्रतिमा

19. चतुर्भुज महाकाल

20. मैत्रेय बुद्ध की प्रतिमा

21. मंजुश्री की ताम्र प्रतिमा

22. दोर्जे फगमो

23. पाँच ध्यानी बुद्ध

लद्दाख का पुनर्संधान/पाठ संबंधी चित्र

24.वज्रपाणि

25. भव-चक्र

26. काल-चक्र

27. थंका चित्र

28. मणि-दीवार

29. स्तूप

30. मणि लग्स्कोर–हस्तचालित मणि चक्र

31. वज्र एवं घंटा

लद्दाख का पुनर्संधान/पाठ संबंधी चित्र

32. लेह स्थित जामा मस्जिद

33. ठिगसे मठ

34. लेह स्थित चर्च

35. ज़ांग्स्कर स्थित रङ्दुम मठ

36. नृत्य की मुद्रा में एक लद्दाखी महिला

37. 'पेरक'– लद्दाखी महिला का पारंपरिक आभूषण

38. ड्रोगपा महिला

39. नृत्य करते लद्दाखी पुरुष

उपसंहार

अनुवाद एक अत्यंत रोचक विधा है। रोचक कहने का अभिप्राय इसे सरल कहना बिलकुल नहीं है। किसी भी अनुवाद की सफलता विषय ज्ञान, भाषा ज्ञान आदि से परिपूर्ण अनुवादक की निष्ठा, श्रम और प्रतिभा पर निर्भर करती है। 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' नामक पुस्तक के प्रथम 130 पृष्ठों का अनुवाद 'लद्दाख का पुनर्संधान' शीर्षक से करते समय प्रस्तुत शोध-अध्येता के सामने विषय ज्ञान संबंधी जो समस्याएँ आईं, उनका समाधान लद्दाख से संबंधित अन्य अनेक स्रोतों की सहायता से किया गया। पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में विषय की भिन्नता को देखते कहीं-कहीं शब्दानुवाद की आवश्यकता नज़र आई तो कहीं भावानुवाद की। अनेक स्थानों पर शब्द का लिप्यांतरण भी किया गया और कहीं-कहीं यथावत भी रखा गया है, हालाँकि कई शब्दों का अर्थ पाद-टिप्पणी के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद के विषय में समतुल्यता के सिद्धांत को लेकर *दिलीप सिंह* कहते हैं, "मूलपाठ और अनूदित पाठ पूर्ण रूप से समरूप(Identical) नहीं होते बल्कि समतुल्य (Equivalent) होते हैं।"[38] इस सिद्धांत के अनुकूल लक्ष्यभाषा पाठ को मूलपाठ के जितना हो सका समतुल्य रखने का प्रयास किया गया है।

सन् 1999 में प्रकाशित 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' में लद्दाख की परिचित छवि को भारत और विश्व के मानचित्र पर उभारने का एक प्रयास किया गया है। लद्दाखियों एवं अन्य देशी-विदेशी हितैषियों के प्रयासों से लद्दाख ने पुराने समय की तुलना में बहुत उन्नति की है। उदाहरण के लिए, 'रिडिस्कवरी ऑफ़ लद्दाख' में लेखक ने लद्दाख के एक पिछड़े क्षेत्र ज़ांग्स्कर का वर्णन करते हुए कहा है कि वहाँ कई स्थानों पर लताओं की रस्सी से बने पुल विद्यमान हैं जो आसानी से पार नहीं किए जा सकते। क्षेत्र के आर्थिक विकास में निस्संदेह यह एक बड़ी बाधा मानी जा सकती है। वर्तमान समय की बात करें तो ज़ांग्स्कर का यह चित्र बदल चुका है। अब वहाँ उन झूला पुलों का स्थान पक्के पुलों ने ले लिया है जिससे यहाँ के

---

[38] अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ, डा. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ.42

लोगों का जीवन पहले की तुलना में काफ़ी सरल हुआ है। इसे उन्नति का स्पष्ट चिह्न कहा जा सकता है। इसके बावजूद भी इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि आधुनिकता और उन्नति केवल सुख नहीं लाते, उसके साथ अनेक बुराइयाँ भी आती हैं। उन्नति का दामन पकड़े लद्दाख की पवित्र भूमि पर आज धनलोलुपता और नैतिक पतन के प्रमाण साफ़ देखे जा सकते हैं। विकास अवश्य हुआ है परन्तु एक भारी कीमत पर।

दशकों पहले ज़ांग्स्कर की यात्रा करने वाले माइकल पेसल अपनी पुस्तक में लिखते हैं, "यहाँ प्रकृति के सौंदर्य को मलिन करने वाली कोई वस्तु नहीं थी। यहाँ मनुष्य का प्रकृतिक आवास मिट्टी से जुड़ा हुआ है, उसी मिट्टी की उपज उसकी भूख मिटाती, उसका देह ढकती है और वह उसी मिट्टी के अनुकूल बना हुआ और उसके बदलते ऋतुओं में ढला हुआ है।"[39] परन्तु आज इतने ही विश्वास के साथ यह कह पाना कठिन है। लद्दाख के कुछ दूरस्थ स्थानों को छोड़ अन्य अधिकतर क्षेत्रों में आधुनिकता लोगों का जीवन आसान बनाने की होड़ में धीरे-धीरे अपना भयानक रूप दिखा रहा है।

एच. एन. कौल ने अपनी पुस्तक के अंतिम अध्याय में लद्दाख पर आधुनिकता के प्रभावों की चर्चा की है परन्तु शोध कार्य की पृष्ठ सीमा से परे होने के कारण उस भाग का अनुवाद नहीं हो पाया है।

अनुवाद के दौरान लद्दाख के विषय में प्रस्तुत शोध-अध्येता को अपने अल्प ज्ञान को विकसित करने का जहाँ एक सुनहरा मौका मिला, वहीं अनुवाद के विषय को लेकर अनेक भ्रांतियों का भी समाधान हुआ। जे.एन.यू के एम.फ़िल. पाठ्यक्रम के अंतर्गत जो निरंतर अनुवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों का अभ्यास होता रहा उससे भी शोध कार्य में बहुत सहायता मिली। प्रस्तुत शोध-प्रबंध से लद्दाख के विषय में जानने के इच्छुक हिंदी पाठकों को लाभ पहुँचेगा।

---

[39] "There was nothing here to tarnish the harmony of nature in which man has his natural place. Blending with the earth, dressed and fed by its products, moulded by its demands and formed by its seasons."
Zanskar- A Hidden Kingdom, Michel peissel, Collins & Harvill Press, London,1979

सहायक ग्रंथ सूची

1. *A Cultural History of Ladakh*	Nawang Tsering Shakspo Edited by Kyle Gardner Centre for Research on Ladakh The Solitarian, Sabu Leh ,2010
2. *A History of Western Tibet*	A.H. Francke(Moravian missionary) S.W. Patridge & Co., London, 1907
3. *An Insight into Ladakh*	Nawang Tsering Shakspo, Edited by Francesch Merritt
4. *Buddha's Western Himalayas (part 1)* *A Politico-Religious History*	O.C.Handa Indus Publishers ,Delhi ,2002
5. *Field Guide*	Birds of Ladakh WWF India & Department of Wildlife Protection, Govt. of India
6. *Field Guide*	Mammals of Ladakh WWF India & Department of Wildlife Protection, Govt. of India
7. *History of Ladakh Called the Mirror Which Illuminates All*	Tashi Rabgais Published by C. Namgyal & Tsewang Taru, Leh Ladakh, 1984
8. *Insight Ladakh*	Pradeep Kumar Tashi Phunchok Ratna Voyages Publications, Leh Ladakh, 2009
9. *Ladakh-* *Between Earth & sky*	Text by Siddiq Wahid B.J. Publications, 1981
10. *Ladakh-Crossroads of High Asia*	Janet Rizvi Oxford University Press, 1983
11. *Ladakh- Through The Ages Towards* *A New Identity*	Shridhar kaul & H.N. Kaul Indus Publishing Company, New delhi, 1992
12. *Ladàk (Physical, statistical & Historical)*	Alexander Cunningham WMH. Allen& Co, 7, lendenhall Street,

London, 1854

13. *Recent Research on Ladakh & Ladakh ; Culture History & Development Between Himalaya & Karakoram* — Edited by- Maartijin Van Beek Kristoffer Brix Bertelsan & Powl Derson Sterling Publishers, New Delhi ,1999

14. *Religious History of Ladakh* — Prem Singh Jina Sri Satguru Publications, Delhi

15. *Zanskar A hidden kingdom* — Michel Peissel Collins & Harvill Press, London, 1979

16. *हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश खण्ड 2, लदद्ाख* — प्रधान संपादक रमेशचन्द्र तिवारी केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान चोगलमसर, लेह लद्दाख, 2010

17. *लदद्ाख-एक विहंगम दृष्टि डोगरा शासन के अंतर्गत 1842-1947* — हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2009

18. *शोध प्रविधि* — प्रो. मैथिली प्रसाद भारद्वाज आधार प्रकाशन पंचकूला, हरियाणा, 2005

19. *भाषाविज्ञान की भूमिका* — आचार्य देवेनद्रनाथ शर्मा राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966

अनुवाद संबंधी पुस्तकें

1. *After Babel – Aspects of Language & Translation* — George Steiner Oxford University Press, London, 1975

2. *Translation - An Advanced Resource book* — Basil Hatim & Jeremy Munday Routledge Applied Lingistics Taylar & Francis Group, London & New York, 2004

3. *Translation- Theory and Practise* — A Historical Reader Edited by- Daniel Eysteinsson, Oxford University Press, 2006

4. *अनुवाद बोध*
गार्गी गुप्त
सहयोग डॉ. रणजीत साहा
डॉ. विमलेश कांति वर्मा
भारतीय अनुवाद परिषद्
नई दिल्ली,1990

5. *अनुवाद विज्ञान की भूमिका*
कृष्ण कुमार गोस्वामी
राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, 2008

6. *अनुवाद विज्ञान-*
सिद्धांत और अनुप्रयोग
संपादक डॉ. नगेन्द्र
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, 1993

7. *अनुवाद-सिद्धांत और समस्याँए*
डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1995

शब्दकोश

1. *सम्पूर्ण अंग्रज़ी-हिन्दी शब्दकोश*
डॉ. भोलानाथ तिवारी
अमरनाथ कपूर
विश्वनाथ गुप्त
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली, 1998

2. *अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश*
फ़ादर कामिल बुल्के, ये.स.
काथलिक प्रेस
राँची, 1968

वेबसाइट्स की सूची

1. *www.himalayanart.org*
2. *www.wikipedia.com*
3. *www.ladakh.com*
4. *www.tibetoralhistory.org*
5. *www.forvo.com*
6. *www.hindkhoj.com*
7. *www.ancienthistory.about.com*
8. *www.wordnik.com*

9. *www.constellationofwords.com*
10. *www.planningcommission.nic.in*
11. *www.chinadaily.com*
12. *www.ancientindia.com.uk*
13. *www.books.google.co.in*